# शोधादर्श

49

तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उत्तर प्रदेश, लखनऊ

भ० महावीर स्वामी
श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र, श्रीमहावीर जी

**आद्य सम्पादक** : (स्व.) डॉ. ज्योति प्रसाद जैन
**प्रधान सम्पादक** : श्री अजित प्रसाद जैन
**सह – सम्पादक** : श्री रमा कान्त जैन

**प्रकाशक :**
तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र.
पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ– २२६ ००४

**णाणं णरस्स सारं- सच्चं लोयम्मि सारभूयं**

# शोधादर्श –४६

**वीर निर्वाण संवत् २५२६** **मार्च २००३ ई.**

## विषय क्रम


| | | | |
|---|---|---|---|
| १. | गुरुगुण–कीर्तन : वर्तमान जैन साहित्य–संसार के भीष्म पितामह जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' | श्री रमा कान्त जैन | १ |
| २. | तथाकथित 'जीवन्तस्वामी' प्रतिमा | डॉ. ज्योति प्रसाद जैन | ६ |
| ३. | सम्पादकीय : कलिकाल तीर्थंकर अंकलीकर जी अवर्णवाद की पराकाष्ठा | श्री अजित प्रसाद जैन | १३ |
| ४. | जैन धर्म की नैतिकता | डॉ. जिनेन्द्र जैन | १६ |
| ५. | उत्तराध्ययन सूत्र में तीर्थंकरों के उल्लेख और कथाएं | डॉ. राजमल वोरा | २१ |
| ६. | जैन दर्शन में जीव का कर्तृत्व और भोक्तृत्व विचार | डॉ. सूरजमुखी जैन | २४ |
| ७. | जीव दया व्यवहार में | डॉ. शशि कान्त | ३० |
| ८. | हमारी दुर्दशा और हीनता का कारण | डॉ. सुखमालचन्द जैन | ३२ |
| ६. | ज्ञातृपुत्र भगवान महावीर | श्री सुरेन्द्र मुनिजी | ३४ |
| १०. | महावीर भगवान हैं | डॉ. परमानन्द जड़िया | ३६ |
| ११. | बधाई गीत | डॉ. महेन्द्रसागर प्रचण्डिया | ३७ |
| १२. | अर्जुन माली (नाटिका) | श्रीमती सुधा जिन्दल | ३८ |
| १३. | अमृत पेय | साहू शैलेन्द्र कुमार जैन | ४६ |

| | | |
|---|---|---|
| १४. पारदर्शी–गीत | ऊँ पारदर्शी | ४६ |
| १५. चिन्तन कण : | | |
| जीव का मरण हिंसा नहीं | श्री धन्य कुमार जैन | ५० |
| मानव की जीवन यात्रा | श्री शान्तिलाल बैनाड़ा | ५१ |
| १६. मील का पाषाण | श्री अंशु जैन 'अमर' | ५२ |
| १७. विद्वत् परिषद ने भी वासोकुण्ड को ही सही कुण्डलपुर स्वीकार किया | डॉ. सत्य प्रकाश जैन | ५४ |
| १८. समाचार विमर्श : | श्री अजित प्रसाद जैन | |
| विद्वत् परिषद का २३वां अधिवेशन | | ५६ |
| आचार्य श्री द्वारा विवाह निषेध का उपदेश | | ५८ |
| १९. समाचार विविधा | | ६० |
| २०. सामयिक परिदृश्य : क्षणिकाएं | श्री रमा कान्त जैन | ६४ |
| २१. प्रवेश सूचना | | ६५ |
| २२. साहित्य सत्कार : | | |
| हस्तिनापुराख्यान– तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुर; तीर्थंकर महावीर; सम्यग्दर्शन; महावीर की जन्मभूमि–कुण्डपुर | श्री अजित प्रसाद जैन | ६६ |
| राह अपनी तरफ; तंत्र विद्या का यथार्थ; Jaina and Hindu Logic- A Comperative Study; History of Jainism (With Special reference to Mathura) | डॉ. शशि कान्त | ६८ |
| लखनऊ संग्रहालय की जैन प्रतिमाएं (एक प्रतिमा–शास्त्रीय अध्ययन); भारतीय दिगम्बर जैन अभिलेख और तीर्थ परिचय–मध्य प्रदेश: १३ वीं शती तक; विमलायन (महावाक्य); जिन–वचन; समय के स्वर | श्री रमा कान्त जैन | ७२ |
| २३. अभिनन्दन | | ७६ |
| २४. शोक संवेदन | | ७७ |
| २५. आभार | | ७९ |
| २६. पाठकों के पत्र | | ८० |

## वर्तमान जैन साहित्य–संसार के भीष्मपितामह

# जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

भगवान वीर के अनुगामी,
'युगवीर' बने इस जीवन में।
बन सत्य–अहिंसा के वाहक,
सन्देश दे रहे कण–कण में।

– श्री ओमप्रकाश, सरसावा

**मुख–मुख से कर्णागत होता, हृत्तार–तार से यह संगीत।**
**मुख्तार तुझी से वर्तमान, कहलाएगा पावन अतीत।।**
**कर पुरातत्व का अनुशीलन, जो दिखा सके गौरवलाली।**
**सदियों तक दीप्तिमान होगी, वह नहीं कभी मिटनेवाली।।**

– श्री कपूरचन्द जैन 'इन्दु'

**ज्ञान की दिव्य ज्योति दे सूक्ष्म विश्व को करके ज्योतिर्मान।**
**मिटाते जग के अन्तर्द्वन्द जगाते जग का अन्तर्ज्ञान।**
**जैन शास्त्रों का सत्य रहस्य प्रकट करते हो आत्मविभोर।**
**वीर प्रभु के अनन्यतम भक्त धन्य जीवन श्री जुगलकिशोर।**

– श्री मामराज शर्मा 'हर्षित'

**मदमातङ्गमृगेन्द्रोऽविद्याध्वान्तैकदिनकरो विमलः।**
**जीयाज्जुगलकिशोरः सदा जगत्यां महामनासोऽयम्।।**

– डॉ. पन्नालाल जैन साहित्याचार्य

वीरसेवा मंदिर (समन्तभद्राश्रम), सरसावा (सहारनपुर) से जनवरी १९४४ में प्रकाशित 'अनेकान्त', वर्ष ६, किरण ५–६, से ऊपर उद्धधृत् काव्यांशों में जिन जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर' का गुणगान हुआ है उनका जन्म उत्तर प्रदेश के सहारनपुर जिले के कस्बा सरसावा में सिंघल गोत्रीय अग्रवाल जैन चौधरी नत्थूमल और श्रीमती भूदेवी के पुत्र रूप में मंगसिर सुदि एकादशी, सम्वत् १९३४ (२० दिसम्बर, १८७७ ई.) को हुआ था। पांच वर्ष की वय में उर्दू–फारसी से इनकी शिक्षा का श्रीगणेश हुआ। तदनन्तर हकीम उग्रसैन की पाठशाला में हिन्दी–संस्कृत पढ़ी। धर्म भाव से जैन शास्त्र भी पढ़ने लगे। फालतू समय में पोस्ट मास्टर

बालमुकुन्द से अंग्रेजी की प्राइमर भी पढ़ डाली। कस्बे में खुले नये अंग्रेजी स्कूल, जिसमें पढ़ाने को बाहर से मास्टर जगन्नाथ बुलाये गये थे, में पांचवी क्लास तक पढ़कर उन्होंने गवर्नमेन्ट हाईस्कूल सहारनपुर में प्रवेश लिया और नवीं कक्षा तक वहां पढ़ते रहे। प्रतिदिन जैन शास्त्रों का पाठ करने वाले इन धर्मनिष्ठ युवा छात्र ने बोर्डिंग हाउस में अपने कमरे के बाहर, शास्त्रों की विनय की दृष्टि से, पट्टिका लगा रक्खी थी 'None is allowed to enter with shoes.' एक दिन एक मुसलमान छात्र जबर्दस्ती जूता पहने इनके कमरे में घुस आया जिसे उन्होंने धक्का देकर बाहर कर दिया। नये आये हेडमास्टर ने इस मामले में उनके साथ न्याय नहीं किया तब प्रतिवाद स्वरूप उन्होंने स्कूल छोड़ दिया और १८९६ ई. में एण्ट्रेन्स परीक्षा प्राइवेट पास की। अपने हेडमास्टर साहब से इसलिये भी वह रुष्ट थे कि उसने इन्हें दशलक्षण पर्व में शास्त्र पढ़ने हेतु सरसावा, जहां जिन मंदिर में वह छोटी उम्र से ही शास्त्र वाचन करते थे, जाने के लिए छुट्टी नहीं दी थी। यद्यपि वह बिना छुट्टी के चले गये और उसके लिये जुर्माना भरना भी स्वीकार किया।

पढ़ाई करते समय ही १६ वर्ष की किशोरावस्था में लगभग १८९३ ई. में उनका विवाह तीतरों के मुंशी होशयार सिंह की सुपुत्री से हो गया। ७ अक्टूबर, १८९९ को सरसावा में उनके पहली पुत्री हुई जिसका नाम उन्होंने सन्मतिकुमारी रक्खा था। वह प्लेग से २४ जनवरी, १९०७ को देवबन्द में कालकवलित हो गई। तदनन्तर ७ दिसम्बर, १९१७ को सरसावा में दूसरी पुत्री विद्यावती ने जन्म लिया। जब वह सवा तीन माह की बच्ची थी उसकी माँ अर्थात् मुख्तार साहब की पत्नी १६ मार्च, १९१८ को इस संसार से कूच कर गई और २८ जून १९२० को क्रूर काल ने मोतीझारे के बहाने उस बच्ची को भी छीन मुख्तार साहब को ४२ वर्ष की वय में नितान्त एकाकी कर दिया। अपनी पुत्रियों से उन्हें इतना लगाव रहा कि कालान्तर में उनकी स्मृति में आकर्षक बाल ग्रन्थमाला के प्रकाशन हेतु 'सन्मति–विद्या–निधि' स्थापित की।

एण्ट्रेन्स परीक्षा उत्तीर्ण करते ही जीविका की समस्या सामने आई। इधर–उधर नौकरी तलाश की। मन माफिक काम नहीं मिला तो नवम्बर १८९९ ई. में बम्बई प्रान्तिक सभा में वैतनिक उपदेशकी ग्रहण कर ली, किन्तु वह उनकी अन्तरात्मा को रास नहीं आई और डेढ़ माह बाद ही उसे छोड़ दिया। स्वतन्त्र रोजगार की दृष्टि से १९०२ ई. में मुख्तारी की परीक्षा पास की और सहारनपुर में प्रैक्टिस प्रारंभ की। १९०५ ई. में वह देवबन्द चले आये और वहाँ ११ फरवरी, १९१४ तक मुख्तारी करते रहे।

सरसावा की जैन पाठशाला में पढ़ते समय ही किशोर जुगलकिशोर में लेखन प्रवृत्ति प्रस्फुटित हो चली थी। ८ मई, १८९९ के 'जैन गजट' (देवबन्द) में, जब वह कक्षा ८ के छात्र थे, उनका पहला लेख, जो जैन कालेज की स्थापना के समर्थन में था, छपा था। उस लेख पर सम्पादक सूरजभान वकील ने यह टिप्पणी अंकित की थी– "लाला जुगलकिशोर विद्यार्थी सरसावा जिला सहारनपुर का लेख अवश्य पढ़िये।" यह उस काल की हिन्दी पत्रकार कला का एक रोचक नमूना है। तदनन्तर 'जैन गजट' में प्रायः उनके लेख प्रकाशित होते रहे। १ जुलाई, १९०७ को इस साप्ताहिक पत्र के सम्पादन का भार उन्हें मिला जिसका निर्वहन वह ३१ दिसम्बर, १९०९ तक करते रहे। स्व संपादित प्रथम अंक में मात्र मंगलाचरण स्वरूप एक लेख उन्होंने लिखा। वस्तुतः तब वह लेखक ही थे, सम्पादनकला उनमें अंकुरित हो रही थी। अपने सम्पादन में उन्होंने तीन बातों पर विशेष ध्यान दिया–भाषा–संशोधन, सुधारभावना और प्रमाणसंग्रहात्मकता। १ सितम्बर, १९०७ के अग्रलेख में उन्होंने पत्रों में प्रकाशित होने वाले अश्लील विज्ञापनों का विरोध किया। सम्भवतया विज्ञापनों के संशोधन पर देश में सबसे पहले आवाज उठाने वाले सम्पादक वही थे। उसी अंक में 'हर्षसमाचार' शीर्षक से शाकटायन–व्याकरण पर लेख छपा। कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' के शब्दों में "यह उनका सबसे पहला लेख है जिसकी लेखन शैली में खोजपूर्णता तो नहीं, पर प्राचीन साहित्य के अनुसंधान के प्रति उनके मन में बढ़ती अभिरुचि का निर्देश है।" यह प्रवृत्ति उत्तरोत्तर विकसित होती गई। उनके सजीव सम्पादन ने 'जैन गजट' के ग्राहकों की संख्या ३०० से बढ़ाकर १५०० कर दी। उनकी सम्पादन प्रतिभा से प्रभावित पं. नाथूराम प्रेमी ने अक्टूबर १९१९ में उन्हें 'जैनहितैषी' के सम्पादन का दायित्व सौंपा जिसे उन्होंने सन् १९२१ तक निभाया। 'जैनहितैषी' के बन्द हो जाने पर प्राचीन जैन साहित्य सम्बंधी शोधखोजपूर्ण लेखों के प्रकाशन में आये गतिरोध को दूर करने के लिये उन्होंने अपने 'समन्तभद्राश्रम' से, जिसकी स्थापना उन्होंने दिल्ली में २१ अप्रैल, १९२९ को की थी, नवम्बर १९२९ से एक मासिक पत्र **'अनेकान्त'** निकालना प्रारंभ किया। इसके सम्पादक वही थे। प्रथमांक में ही उन्होंने अपने पत्र की नीति घोषित कर दी जो उसके नामानुरूप "अनेकान्त–नीति" थीं। उनका उद्देश्य इस पत्र में लोकहित की दृष्टि से लिखे गये उन लेखों को स्थान देने का था जो युक्ति पुरस्सर हों, शिष्ट–सौम्य भाषा में हों, व्यक्तिगत आक्षेपों से दूर हों और किसी धर्म विशेष का अनादर करने वाले न हों। नवम्बर १९३० में प्रथम वर्ष की १२वीं किरण निकलने के उपरान्त आर्थिक

एवं अन्य कारणों से इस पत्र का प्रकाशन ८ वर्ष तक बाधित रहा और वर्ष २ की किरण १ उनके सम्पादकत्व में वीरसेवा मंदिर, सरसावा से १ नवम्बर १९३८ को प्रकाश में आ पाई। यह पत्रिका अभी जीवित है नई दिल्ली से प्रकाशित त्रैमासिक के रूप में।

मुख्तार साहब की संपादन कला के विषय में डॉ. ज्योति प्रसाद जैन ने 'तीर्थंकर' पत्रिका (इंदौर) के 'जैन पत्र–पत्रिकाएं विशेषांक' (अगस्त–सितम्बर १९७७) में लिखा था, "उन जैसा संपादकाचार्य जैन समाज में अब तक अन्य नहीं हुआ। **'अनेकान्त'** में दिये जाने वाले लेखों के साथ वे कितने धीरज और अध्यवसायपूर्वक श्रम करते थे, यह मैंने बहुत करीब से देखा है। अपनी लाल क़लम से वे लेख का हुलिया (दृश्य) ही बदल देते थे, सारा लेख उनके संशोधनों से सुर्ख हो जाता था, किन्तु तारीफ यह थी कि वे लेखक के मन्तव्य एवं तथ्यों को कोई क्षति नहीं पहुंचाते थे।"

अपने प्रकाशनों की प्रामाणिकता हेतु मुख्तार साहब प्रूफ संशोधन के प्रति कितने सतर्क थे, कितना श्रम करते थे इसका सजीव चित्रण 'अनेकान्त' (जनवरी १९४४) के अंक में प्रकाशित काशीराम शर्मा 'प्रफुल्लित' के संस्मरण में है।

काव्य–रचना के अंकुर मुख्तार साहब में बाल्यकाल से ही रहे। सरसावा में अंग्रेजी स्कूल खुलने पर उसके स्वागत में उन्होंने लिखा था–

**"नया इस्कूल यह जारी हुआ है,**
**चलो, लड़को, पढ़ो, अच्छा समा है,**
**जमाअत दसवीं से है पांचवी तक,**
**पढ़ाई सर–ब–सर कायम है अब तक।"**

सन् १८९६ में उनके घर में बच्चा होने वाला था। महिलाओं द्वारा गाये जाने वाले पारम्परिक बधाई गीत उन्हें पसन्द नहीं आये। अतः उन्होंने स्वयं एक गीत लिखकर दिया जिसकी प्रथम पंक्ति थी–

**"गावो री बधाई सखि मंगलकारी"**

यह गीत मूलतः उर्दू–फारसी के छात्र रहे जुगलकिशोर के युवामन में हिन्दी के प्रति उमड़ रहे प्रेम का प्रतीक था। सन् १९०० के आसपास शोलापुर से प्रकाशित आचार्य पद्मनंदी की 'अनित्य पंचाशत्' कृति युवाकवि जुगलकिशोर को इतनी भायी कि उन्होंने उसका पद्यानुवाद कर डाला जो १९१४ ई. में **'अनित्य भावना'** नाम से प्रकाशित हुआ।

सन् १९१४ में मुख्तारी छोड़ने के उपरान्त संस्कृत के विभिन्न सुभाषित ग्रन्थों से अपने मनोनुकूल सुभाषितों का चयन कर उन्होंने उनका सरल हिन्दी पद्य में भावानुवाद या छायानुवाद किया और उसमें यथास्थान स्वरुचि–अनुसार कुछ घटाया–बढ़ाया भी। तदनन्तर उन पद्यों को इस प्रकार अनुस्यूत किया कि वह **'मेरी भावना'** नामक सुमनावलि बन गई। यह उनकी जीवन–साधना का मैनीफेस्टो (घोषणापत्र) थी। सर्वप्रथम 'जैनहितैषी' पत्रिका के अप्रैल–मई १९१६ के संयुक्तांक में इसका प्रकाशन हुआ और यह एक कालजयी रचना सिद्ध हुई। इसमें उनका कवि उपनाम 'युगवीर' देखने को मिलता है। यह कृति इतनी लोकप्रिय हुई कि पुस्तिका रूप में इसकी २० लाख प्रतियां हिन्दी में छपने और इसका अंग्रेजी, संस्कृत, उर्दू, गुजराती, मराठी और कन्नड़ भाषाओं में अनुवाद होने का उल्लेख कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' ने 'अनेकान्त (जनवरी १९४४) में किया था। बंगला भाषा में भी इसका अनुवाद हुआ। आज भी सहस्रों व्यक्तियों को मानवीय भावनाओं से ओतप्रोत यह रचना कंठस्थ है और वे इसका नित्यपाठ करते हैं।

सन् १९२० में उनका एक काव्य संकलन **'वीर पुष्पांजलि'** नाम से प्रकाशित हुआ। उस समय वह समाज के घोर विरोध का सामना कर रहे थे, पर अपनी स्थापनाओं की अकाट्यता और विरोधियों की हार में उनका कितना अभंग विश्वास था यह उस पुष्पांजलि के मुखपृष्ठ पर छपी इन पंक्तियों से स्पष्ट है जिनमें उन्होंने अपने स्वभाव का परिचय भी दे डाला–

**"सत्य समान कठोर, न्यायसम पक्ष–विहीन,**
**हूंगा मैं परिहास रहित, कूटोक्ति क्षीण,**
**नहीं करूंगा क्षमा, इंच भर नहीं टलूंगा,**
**तो भी हूँगा मान्य, ग्राह्य, श्रद्धेय बनूँगा।।"**

सन् १९२८ में पद्य में उनकी **'मेरी द्रव्य पूजा'** और १९३३ में पूज्यपाद देवनन्दी की **'सिद्ध–भक्ति'** के पद्यानुवाद स्वरूप **'सिद्धिसोपान'** प्रकाशित हुई। तदनन्तर भी उनकी काव्य–साधना हिन्दी और संस्कृत में चलती रही। उनकी काव्य–कृतियों का एक संकलन **'युग भारती'** नाम से हुआ।

जुगलकिशोर जी की साहित्य साधना का एक अति महत्वपूर्ण पक्ष है उनके द्वारा सामाजिक कुरीतियों पर प्रहार और प्राचीन जैन साहित्य का अन्य सम्प्रदायों के साहित्य के साथ तुलनात्मक गहन अध्ययन–मनन, शोध–मंथन कर सत्य को निर्भीकता से उजागर करना। सन् १९१३ में उनकी **'जिनपूजाधिकार मीमांसा'** प्रकाशित हुई और सन् १९१७ में **'ग्रन्थ परीक्षा'** के प्रथम एवं द्वितीय भाग, सन् १९२१ में भाग तृतीय और जनवरी १९३४ में भाग चतुर्थ प्रकाश में आये। **'ग्रन्थ–परीक्षा'**

प्रथम भाग में उन्होंने **'उमास्वामी श्रावकाचार'**, **'कुन्दकुन्द श्रावकाचार'** और **'जिनसेन त्रिवर्णाचार'** इन तीन ग्रन्थों की परीक्षा की। द्वितीय भाग में **'भद्रबाहु संहिता'**; तृतीय में भट्टारक सोमसेन के **'त्रिवर्णाचार'**, **'धर्म परीक्षा'**, **'अकलंक प्रतिष्ठापाठ'** और **'पूज्यपाद उपासकाचार'** का; तथा चतुर्थ में 'सूर्यप्रकाश' ग्रन्थ का परीक्षण किया। **उन्होंने** अपने गहन तुलनात्मक अध्ययन और तटस्थ परीक्षण द्वारा उन ग्रन्थों में पाई गई विसंगतियों आदि पर प्रकाश डाला। भट्टारक सोमसेन के **'त्रिवर्णाचार'** को तो जैन संस्कृति के आचार मार्ग के प्रतिकूल और **'सूर्यप्रकाश'** को अप्रमाणिक ठहरा दिया। उनकी यह ग्रन्थ–परीक्षा परम्परागत संस्कारों पर कड़ा कशाघात थी। अनेक विद्वान उससे तिलमिला उठे और उन्होंने उन्हें 'धर्मद्रोही' की उपाधि दे डाली। किन्तु उससे अविचलित रह वह अपने कार्य में लगे रहे। अपने गहन अध्ययन द्वारा उन्होंने **'जैनाचार्यों तथा जैन तीर्थंकरों में शासन भेद'** नामक जो लेखमाला प्रकाशित की उसने तो कोहराम मचा दिया। उसके विरुद्ध भी उछलकूद तो बहुत हुई, पर उनकी स्थापनाएं अटल ही रहीं, कोई उनके विरुद्ध प्रमाण न ला सका। उन्होंने विद्वानों को शास्त्र–परीक्षण की एक नई दिशा प्रदान की।

सन् १९२१ में **'उपासनातत्व'**, १९२२ में **'विवाह समुद्देश्य'**, १९२५ में **'विवाहक्षेत्र प्रकाश'** व **'रत्नकरण्ड श्रावकाचार की प्रस्तावना'**, १९३५ में **'स्वामी समन्तभद्र'**, १९४२ में **'रत्नकरण्डश्रावकाचार का अनुवाद**, १९४३ में **'वृहत्स्वयंभूस्तोत्र का अनुवाद'** और १९४४ में **'सत्साधु–स्मरण–मंगलपाठ'** का प्रकाशन हुआ। अप्रैल १९५५ में समन्तभद्राचार्य के **'रत्नकरण्डश्रावकाचार'** की विस्तृत व्याख्या **'समीचीन धर्मशास्त्र'** नाम से प्रकाशित हुई।

मुख्तार साहब के ३२ निबन्धों का लगभग ७५० पृष्ठीय एक संग्रह सन् १९५६ में **'जैन साहित्य और इतिहास पर विशद प्रकाश'** प्रथम खण्ड नाम से प्रकाशित हुआ था। तदुपरान्त १९६३ ई. में समाज सुधार, अंधविश्वासों एवं अज्ञानपूर्ण मान्यताओं –प्रथाओं आदि की तीव्र आलोचना, राष्ट्रीयतापोषण एवं राजनीतिक दशा, हिन्दी प्रचार, जैन नीति, जैन उपासना का स्वरूप, जैनी भक्ति का रहस्य आदि अनेक उपयोगी विषयों को समाविष्ट किये ४१ मौलिक निबन्धों का संग्रह **'युगवीर–निबन्धावली–प्रथम खण्ड'** के रूप में प्रकाशित हुआ। उक्त संग्रह के 'नये युग की झलक' नामक प्राक्कथन में डॉ. हीरालाल जैन ने लिखा है– "इन पुराने लेखों में ऐतिहासिक महत्व के अतिरिक्त वर्तमान परिस्थितियों के सम्बन्ध में भी मार्गदर्शन की प्रचुर सामग्री उपलब्ध है।" उसी श्रृंखला में सन् १९६७ में ८७२ पृष्ठीय एक अन्य संकलन **'युगवीर निबन्धावली–द्वितीय खण्ड'** नाम से प्रकाशित

हुआ जिसमें मुख्तार साहब के उत्तरात्मक, समालोचनात्मक, कृति परिचयात्मक, विनोद–शिक्षात्मक एवं प्रकीर्णक–इन ५ विभागों में वर्गीकृत ६५ निबन्ध–लेखादि समाहित हैं। निबन्धावली के इस खण्ड के पूर्व १६६५ ई. में उनकी कृति **'सन्मति सूत्र और सिद्धसेन'** का डॉ. ए. एन. उपाध्ये कृत अंग्रेजी अनुवाद प्रकाशित हो चुका था। उक्त कृति और निबन्धावली के द्वितीय खण्ड पर प्राक्कथन लिखने का सौभाग्य डॉ. ज्योति प्रसाद जैन को प्राप्त रहा।

भगवान महावीर के परम उपासक और स्वामी समन्तभद्र के अनन्य भक्त जुगलकिशोर जी ने न केवल 'वीर सेवा मंदिर' और 'समन्तभद्राश्रम' जैसी संस्थाओं की अपने एकाकी बलबूते पर स्थापना की, अपितु अनेक शास्त्र–भण्डारों से खोज–खोजकर कितने ही प्राचीन ग्रन्थों का उनकी जीर्ण–शीर्ण पाण्डुलिपियों पर से उद्धार किया। उन्होंने उनका संशोधन भी किया तथा उनमें से कई को सुसम्पादित कर अपनी संस्था से प्रकाशित कराया। **'पुरातन जैन–वाक्य सूची'**, **'जैन ग्रन्थ प्रशस्ति संग्रह'**, और **'जैन लक्षणावली'** जैसे अतीव उपयोगी संदर्भ ग्रन्थ उनके 'वीर सेवा मंदिर' की देन हैं।

**'युक्त्यनुशासन'**, **'देवागम'**, **'अध्यात्म रहस्य'**, **'तत्वानुशासन'**, **'समाधितन्त्र'** आदि अनेक ग्रन्थों के अद्वितीय अनुवाद–भाष्य उन्होंने रचे और कई ग्रन्थों की विद्वत्तापूर्ण विस्तृत प्रस्तावनाएं लिखीं। मूल लेखक के भावों को हृदयंगम कर उसे सरल भाषा में प्रकट करना मुख्तार साहब के अनुवादों की विशेषता रही। उनके **'युक्त्यनुशासन'** के अनुवाद की सराहना करते हुए डॉ. देवेन्द्र कुमार जैन ने लिखा था, "**युक्त्यनुशासन'** जैसे जटिल, दार्शनिक तथा महान ग्रन्थ का प्रामाणिकता के साथ हिन्दी अनुवाद कर यथार्थ मर्म को प्रकाशित करना मुख्तार श्री की प्रतिभा का ही कार्य है।" दर्शनशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित डॉ. महेन्द्र कुमार न्यायाचार्य ने भी उसे एक जटिल एवं सारगर्भित ग्रन्थ का सुन्दरतम अनुवाद घोषित किया। अपने जीवन के अन्तिम दिनों में भी वह **'हेमचन्द्रीय योगशास्त्र'** की एक विरल दिगम्बर टीका, **'अमितगति के योगदासार प्राभृत के स्वोपज्ञ भाष्य'** तथा **'कल्याणकल्पद्रुम स्तोत्र'** पर मनोयोगपूर्वक कार्य करते रहे।

सरलता–सादगी के पर्याय, सन् १६२० से बराबर खादी पहनने वाले और महात्मा गांधी की पहली गिरफ्तारी पर यह व्रत लेने वाले कि जब तक वह छूट न जायें बिना चर्खा काते भोजन नहीं करेंगे, पं. जुगलकिशोर जी में राष्ट्रीय भावना पूर्णतः समायी थी जो उनकी अनेक रचनाओं में भी मुखरित हुई। उन्होंने शहर के कोलाहल से दूर अपनी साहित्य–साधना हेतु जन्मभूमि सरसावा में वीर सेवा मंदिर

बनाया था। वह मंदिर तो नहीं, एक गुरुकुल सरीखा आश्रम था जिसके अधिष्ठाता वह स्वयं थे और उनके सानिध्य में वहां डॉ. दरबारीलाल कोठिया और पं. परमाननद शास्त्री प्रभृति कई विद्वान साहित्य–साधनारत रहते थे। बाद में उनके प्रशंसक कतिपय उदार धनिकों के आग्रह और सहयोग से इस महत्वपूर्ण शोध संस्थान को राष्ट्रीय गरिमा प्रदान करने हेतु दिल्ली स्थानान्तरित किया गया। १७ जुलाई, १६५४ को साहू शांति प्रसाद ने नये भवन का शिलान्यास किया था। किन्तु किन्हीं कारणों से दिल्ली में मुख्तार साहब का मन अधिक समय तक नहीं रम सका और वह जीवन के अंतिम वर्षों में अपने भतीजे डॉ. श्रीचन्द संगल के पास एटा आकर रहने लगे। वहीं ६१ वर्ष २ दिन की वय पा २२ दिसम्बर, १६६८ ई. को उनका महाप्रयाण हुआ।

स्वाभिमानी, स्वालम्बी, स्वतन्त्रचेता मुख्तार साहब सन् १६१४ में मुख्तारी छोड़ने के उपरान्त खुद मुख्तार रहे। मानवीय दुर्बलताओं से युक्त होते हुए भी वह इतने निस्पृही थे कि उन्होंने अपनी सारी सम्पत्ति साहित्य–साधना को अर्पित कर दी और मरते समय अपनी शेष निजी सम्पत्ति का एक ट्रस्ट' बना गये जिससे कई पुस्तकें प्रकाशित हुईं। ५ दिसम्बर, १६४३ को सरसावा के इस सन्त का सहारनपुर में भव्य सार्वजनिक सम्मान हुआ था। उस अभिनन्दन का कितने नपे–तुले शब्दों में, कितनी विनम्रता और शालीनता से उन्होंने अपना आभार व्यक्त किया था वह 'अनेकान्त' (जनवरी १६४४) में पृष्ठ १६५–१६७ पर दृष्टव्य है। सन् १६२३ में दिल्ली में अ.भा. दिगम्बर जैन परिषद की स्थापना का जिन व्यक्तियों को श्रेय है उनमें एक पं. जुगलकिशोर जी भी थे। सन् १६४४ की श्रावण कृष्ण प्रतिपदा को राजगृह के विपुलाचल पर भगबान महावीर की देशना के २५०० वर्ष पूर्ण होने पर सोत्साह 'वीर शासन जयन्ती' आयोजित करानेवाले और तदनन्तर यह देशना तिथि प्रतिवर्ष वीर शासन जयन्ती के रूप में देश में मनायी जाये इस आन्दोलन के प्रवर्तक भी वही रहे।

प्राच्य–विद्या–महार्णव, सिद्धान्ताचार्य एवं सम्पादकाचार्य विरुदों से विभूषित ६१ वर्ष का जीवन पाये पं. जुगल किशोर मुख्तार 'युगवीर' वस्तुतः जैन साहित्य–संसार के भीष्मपितामह रहे। उन्हें अपने जीवनकाल में अनेक स्वजनों तथा अग्रज, साथी और अनुज साहित्य महारथियों को दिवंगत होते देखने का दुख भी झेलना पड़ा। उनका जन्म हुए गत २० दिसम्बर को १२५ वर्ष पूर्ण हो गये। उनकी इस १२५वीं जयन्ती पर उनके प्रेरणास्पद व्यक्तित्व–कृतित्व का स्मरण कर हमारा मस्तक उनके पादारविन्द में श्रद्धा से नत है।

**– रमा कान्त जैन**

ज्योति निकुंज, चारबाग,लखनऊ

# तथाकथित 'जीवन्तस्वामी' प्रतिमा

**– डॉ. ज्योतिप्रसाद जैन**

इधर कुछ समय से 'जीवन्तस्वामी' नाम से प्रसिद्ध की गई एक धातु मूर्ति बहुचर्चित रही है। गत दो वर्षों में भगवान महावीर के जीवन आदि के विषय पर प्रकाशित कुछ पुस्तकों के मुख पृष्ठों पर अथवा उनके भीतर इस मूर्ति के उर्ध्वभाग (वस्ट) के फोटो–चित्र छपे हैं। कहीं–कहीं मूलचित्र को सुधार कर अथवा उसके अनुकरण पर किसी वर्तमान चित्रकार से बनवाये और कल्पना से पूरे किये गये रंगीन चित्र भी छपे हैं। एक सज्जन ने तो **'जीवन्त स्वामी महावीर चित्रशतक'** नाम से भी चित्र–संकलन प्रकाशित किया है। इन चित्रों और उनकी व्याख्या रूप से किये गये कथनों को लेकर एक विवाद भी उठ खड़ा हुआ—पत्र–पत्रिकाओं में उत्तर–प्रत्युत्तर भी चले और कुछ नवीन भ्रान्तियों का भी उदय हुआ।

वस्तुतः विवक्षित मूर्ति कुछ वर्ष हुए गुजरात प्रान्त के बड़ौदा नगर के निकट अकोटा (अङ्कोटक) नामक स्थान से जमीन में दबी हुई मिली थी और अब बड़ौदा के पुरातत्व संग्रहालय में सुरक्षित है। मूर्ति खण्डित है–दोनों भुजाएं कुहनियों के ऊपर से ही लुप्त हैं, दोनों पैर भी घुटनों के नीचे लुप्त हैं, चरण चौकी भी नहीं है, शेष भाग वक्षस्थल, उदर आदि भी मिट्टी से खाये हुए क्षत–विक्षत हैं। मूर्ति पर कहीं कोई लेख भी नहीं है। गरदन से ऊपर का भाग, मुख, मुकुट मंडित शिर आदि प्रायः अक्षुण्ण हैं। मस्तक पर गोल तिलक है। आंखों में पुतली के लिए चांदी का और होठों पर लाली के लिए ताम्बे का प्रयोग किया लगता है। मुखमुद्रा बड़ी सुन्दर मनोज्ञ और ध्यान मग्न–सी लगती है। इस मूर्ति के साथ उसी स्थान से कई अन्य धातु मूर्तियां निकली हैं जो सब जैन परम्परा से सम्बंधित मान्य की जाती हैं। इन अन्य मूर्तियों में से एक वस्त्राभूषण एवं मुकुट–मण्डित किशोर व्यक्ति की मूर्त्ति है जो क्षत–विक्षत होते हुए भी प्रायः पूर्ण है, पादपीठ भी है जिस पर गुप्तोत्तरकाल की ब्राह्मी लिपि का एक छोटा–सा अभिलेख भी अंकित है। लेख का आशय बताया जाता है कि "चान्द्रकुल की श्राविका नागीश्वरी द्वारा जीवन्तस्वामी प्रतिमां का देवधर्म (धर्मार्थ दान)"। पूर्वोक्त मूर्ति इस मूर्ति की अनुकृति नहीं है, आकृति आदि में भी अन्तर है। यह दूसरी मूर्ति उतनी सुन्दर और मनोज्ञ भी नहीं है, किन्तु शैली आदि की प्रतिमा शास्त्रीय (आइकोनोग्रेफीकल) दृष्टि से डॉ. उमाकान्त शाह ने उस मूर्ति को इसके अनुरूप मानकर उसे भी जीवन्तस्वामी की ही एक प्रतिमा परिकल्पित किया है। डॉ० शाह बड़ौदा प्राच्य विद्या मंदिर एवं

संग्रहालय के निदेशक हैं, अच्छे कलामर्मज्ञ और पुरातत्वज्ञ हैं। अपने विषय से सम्बंधित श्वेताम्बर साहित्य एवं अनुश्रुतियों से परिचित होने की उन्हें पर्याप्त सुविधा रही है। इस काल में जीवन्तस्वामी विषयक श्वेताम्बर अनुश्रुतियों एवं तथाकथित उक्त जीवन्तस्वामी प्रतिमाओं की प्रसिद्धि एवं प्रचार करने का प्रधान श्रेय उन्हीं को है।[1]

अकोटा से प्राप्त उक्त धातु मूर्तियों में केवल एक और, तथाकथित ऋषभनाथ मूर्ति, लेखांकित है, जिस पर 'निवृत्ति कुले जिनभद्र वाचनाचार्य' शब्द पढ़े गये हैं। इन जिनभद्र वाचनाचार्य को **विशेषावश्यक भाष्य** के रचयिता सुप्रसिद्ध जिनभद्रगणी—क्षमाश्रमण मानकर, जिनकी सुनिश्चित ज्ञात तिथि ६०६ ई. है, उक्त मूर्तियों को छठी—सातवीं शती ई. में निर्मित परिकल्पित किया है। जिस मूर्ति को ऋषभ प्रतिमा अनुमान किया गया है उसके पादपीठ पर दो मृगों के मध्य धर्मचक्र बना हुआ है और वह सवस्त्र है—धोती पहिने हुए है यद्यपि उसमें से उसका नग्नत्व स्पष्ट झलक रहा है। डॉ० शाह का कहना है कि जैन परम्परा की यह सर्वप्राचीन उपलब्ध सवस्त्र जिन प्रतिमा है, और प्रायः उस काल की है जब दिगम्बर और श्वेताम्बर जिनमूर्तियों में भेद करना शुरू हो रहा था—उसके (छठी शती ई. के) पूर्व की सभी प्रतिमाएं दिगम्बर थीं। क्या आश्चर्य है जो सवस्त्र जिनप्रतिमाओं के प्रचार का प्रारंभ तथाकथित जीवंत स्वामी मूर्तियों के निर्माण से ही किया गया हो, यह कहकर कि वे तीर्थंकर के दीक्षापूर्व—गृहस्थ अवस्था की हैं अतएव उनके सवस्त्र होने में क्या आपत्ति है।

'जीवंतस्वामी' शब्द से, डॉ. शाह के अनुसार, ऐसा ध्वनित होता है कि इस प्रकार की प्रथम मूर्ति भगवान महावीर के जीवनकाल में ही बन गई थी और सम्भवतया उनकी प्रायः हूबहू अनुकृति थी, शायद (दीक्षापूर्व) कुमार अवस्था की, अतएव बाद में निर्मित इस प्रकार की अन्य मूर्तियां भी जीवन्त—स्वामी प्रतिमायें कहलाईं। यहां एक शंका होती है कि यदि भगवान के जीवनकाल में बनने और संभवतया उनकी अनुकृति होने के कारण ये प्रतिमाएं जीवन्तस्वामी कहलाईं तो भगवान के १२ वर्ष के तपःजीवन और कैवल्य प्राप्ति के उपरांत के ३० वर्ष के तीर्थङ्कर काल की प्रतिमाएं भी तो जीवन्तस्वामी ही कहलातीं—ऐसी प्रतिमाएं क्यों नहीं बनी, यह आश्चर्य की बात है।

अपनी परिकल्पनाओं के समर्थन में विद्वान लेखक ने साहित्यिक अनुश्रुतियों का भी पर्याप्त उपयोग किया है। श्वेताम्बर परम्परा सम्मत आगम सूत्र

---

१. स्टडीज इन जैन आर्ट (जैन संशोधक मंडल, वाराणसी, १९५५); बुलेटिन प्रिन्स ऑफ वेल्स म्यूजियम, बम्बई, नं. १; अकोटा ब्रोन्जेजः जर्नल ऑफ इण्डियन म्यूजियम, भाग ११।

देवर्द्धिगणी–क्षमाश्रमण द्वारा ४५३ या ४६६ ई. में गुजरात के वलभी नगर में लिपिबद्ध हुए थे। उन्हीं मे से एक **भगवतीसूत्र** है, अतः उसकी प्राचीनता पांचवी शती ई. से कम नही है। उसमें सिन्धु–सौवीर देश की राजधानी वीतभयपत्तन के नरेश उदायन (उद्रायन या उदयन) और उसकी रानी प्रभावती का भगवान के भक्त होने का, उनके दर्शनों की इच्छा करने का, भगवान के उस नगर में पधारने का और उनके समीप उक्त राजा और रानी के दीक्षा लेने का उल्लेख है। अन्यत्र देश का नाम कच्छ और नगर का नाम रोरुक लिखा है और रानी प्रभावती को वैशाली के लिच्छवि नरेश चेटक की ही एक पुत्री बताया है। संघदासकृत **वसुदेवहिंडि** (छठी शती ई. एवं उपरान्त) तथा **वृहत्कल्पभाष्य** (जो उससे भी परवर्ती है) के अनुसार उज्जैन में जीवन्तस्वामी रथयात्रा के अवसर पर आर्य सुहस्ति के उपदेश से मौर्य सम्राट सम्प्रति ने जैनधर्म अंगीकार किया था। जिनदासकृत **आवश्यक चूर्णि** (६७६ ई.), हरिभद्रसूरिकृत **आवश्यक वृत्ति** (८वीं शती ई.) और हेमचन्द्राचार्य (११२५–७२ ई.) के **त्रिषष्ठि शलाका पुरुषचरित** में उल्लेख हुआ है कि वीतभयपत्तन नरेश उद्द्रायन और उसकी रानी ने सर्वप्रथम जीवन्त स्वामी प्रतिमा चन्दनकाष्ठ की बनवाई थी जिसकी वे दोनों पूजा करते थे और इस प्रतिमा को अवन्ति नरेश चण्डप्रद्योत अपहरण करके ले गया था। एक स्थान में यह भी कहा गया है कि उस प्रतिमा के स्थान में प्रद्योत एक साधारण काष्ठ प्रतिमा रख आया था। हेमचन्द्राचार्य ने यह भी लिखा है कि उस काल में (अपहरण के उपरान्त ?) दशपुर और विदिशा में जीवन्तस्वामी की रथयात्रा निकाली जाती थी और पूजा की जाती थी। उन्होंने यह भी लिखा बताया जाता है कि एक भयंकर तूफान–भूचाल आदि से वीतभयपत्तन नगर ध्वस्त एवं भूमिस्थ हो गया और उसके साथ उपरोक्त जीवन्त स्वामी प्रतिमा भी, और जब उनके शिष्य गुजरात के सोलंकी नरेश कुमारपाल (११४४–७३ ई.) को यह विगत ज्ञात हुई तो उसने उस स्थान की खुदाई कराई और भूमि में दबी वह प्रतिमा प्राप्त कर ली तथा एक मंदिर बनवाकर उसमें उसे प्रतिष्ठित किया था।

इस सब के बावजूद, यह आश्चर्य की बात है कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में भी भ. महावीर की जीवन्त–स्वामी–प्रतिमाओं के निर्माण एवं प्रतिष्ठित करने का प्रचलन नहीं हुआ, और आज केवल अकोटा से प्राप्त सातवीं शताब्दी के लगभग की पूर्वोक्त एक नामांकित और दूसरी परिकल्पित (जिसके चित्र प्रचलित हो रहे हैं), दो धातुमूर्तियों के अतिरिक्त प्रायः कोई भी अन्य वैसी प्रतिमा विद्यमान नहीं है। दिगम्बर आम्नाय के तो साहित्य और कला में अभी तक कहीं भी तथोक्त जीवन्तस्वामी प्रतिमाओं के विषय में कोई संकेत प्राप्त नहीं हुआ है।

विवक्षित (लेख रहित) तथाकथित जीवन्तस्वामी प्रतिमा को देखकर भावुक एवं कल्पनाशील व्यक्तियों का आकर्षित होना स्वाभाविक है। परन्तु कथनोपकथनों में भी भ्रान्तियां या भ्रान्तिमूलक धारणाएं बन गई या बनती जा रही हैं उनके कुछ कारण ये हो सकते हैं–उक्त मूर्ति के संबंध में पूरी जानकारी न होना; तत्सम्बंधी श्वेताम्बर अनुश्रुतियों के विषय में ठीक–ठीक एवं पूरी जानकारी का न होना, डॉ० शाह प्रभृति विशेषज्ञों के कथनों को भली प्रकार न समझना, अथवा उनमें से कितने और कौन से तथ्याधारित हैं और कितने और कौन से उनके द्वारा परिकल्पित या अनुमानित हैं, इस बात पर सम्यक् ध्यान न देना, तथा बहुधा उनके कथनांशों को प्रसंग से काट कर ग्रहण कर लेना और फलस्वरूप ऐसे निष्कर्ष निकाल लेना या धारणाएं बना लेना जो शायद उन्हें भी अभिप्रेत नहीं है।

जीवन्तस्वामी का जो अर्थ डॉ. शाह ने किया है वह भी उनकी सर्वथा नवीन कल्पना नहीं है, सिवाय इसके कि राजा उदयन वाली मूल प्रतिमा सम्भवतया भगवान के दीक्षा लेने के एक वर्ष पूर्व अपने महल में ध्यान करते समय की उनकी यथावत अनुकृति पोर्ट्रेट स्टेचू रही हो। विजय पद्मसूरि नामक एक अर्वाचीन यतिजी ने यह कल्पना प्रस्तुत की थी कि भगवान के ज्येष्ठ भ्राता नन्दिवर्धन ने उनके जीते जी (निर्वाण के पूर्व, अर्हत् अवस्था की) उनकी शरीर के परिमाणानुसार दो प्रतिमाएं बनवाई थीं, इसी से वे जीवंतस्वामी प्रतिमाएं कहलाई। मुण्डस्थल (आबू रोड के निकट मूंगथला) में प्राप्त सं. १४२६ के एक शिलालेख में लिखा है कि भगवान की आयु के ३७वें वर्ष में अर्थात् छद्मस्थकाल में देवा श्रावक ने इस स्थान में एक मंदिर बनवाया था और तभी उसमें राजा पुण्यराज ने भगवान की प्रतिमा प्रतिष्ठित की थी। ऐसे उल्लेखों की समीक्षा करते हुए और उन्हें कपोल–कल्पित सिद्ध करते हुए मुनि श्री विजयेन्द्रसूरि ने अपनी पुस्तक **वीर–विहार मीमांसा** में लगभग डेढ़ दर्जन धातु प्रतिमाओं के लेखों को उद्धृत किया है, जो सं. १४२६ से सं. १५५१ तक के हैं और आदिनाथ, अजितनाथ, सुमतिनाथ, चन्द्रप्रभु, शीतलनाथ, विमलनाथ, शांतिनाथ, नमिनाथ, पार्श्वनाथ आदि विभिन्न तीर्थंकरों की जीवितस्वामी प्रतिमाओं के हैं, यथा– जीवितस्वामि चन्द्रप्रभ बिम्ब, जीवितस्वामि श्री शांतिनाथ बिंब, जीवितस्वामि श्री अजितनाथ प्रमुख पंचतीर्थी बिंब, जीवितस्वामि श्री शीतलनाथादिजिन चतुर्विंशतिपट्टः, इत्यादि। परन्तु, जैसा कि मुनिजी ने लिखा है, 'जीवितस्वामि' नाम से भ्रम में पड़ने की आवश्यकता नहीं, क्योंकि इस शब्द का प्रयोग आज तक अनेक बार अनेक प्रकार से हुआ है.....वस्तुतः जीवितस्वामी प्रतिमा का अभिप्राय है ऐसी प्रतिमा जो जीवित प्रतीत होती हो अथवा जीती–जागती प्रतिमा से है।'

**[ जैन सन्देश (शोधांक) ३४ से साभार ]**

## सम्पादकीय

# कलिकाल तीर्थंकर अंकलीकर जी– अवर्णवाद की पराकाष्ठा ?

अंकलीकर वाणी (२० फरवरी, २००३) के अन्तिम पृष्ठ (४३) पर ब्र. मैनाबाई संघस्थ आचार्य सन्मतिसागर संघ द्वारा प्रकाशित अपील के निम्नलिखित अंश दृष्टव्य हैं:

"——दक्षिण भारत के वयोवृद्ध संत, आदर्श तपस्वी, मुनि कुंजर, अप्रतिम उपसर्ग विजेता, महामुनि, **कलिकाल तीर्थंकर**, आचार्य शिरोमणि श्री आदिसागर जी महाराज अंकलीकर २०वीं सदी के महान् आचार्य हुए हैं। – उन महामहिम महात्मा का समाधि दिवस फागुन कृष्णा १३, दि. २८ फरवरी, २००३ को अपनी शक्ति भक्ति के आयोजन आयोजित करके सातिशय पुण्यार्जन कीजिए।"

ब्र. मैनाबाई जी आचार्य आदिसागर अंकलीकर जी की परम्परा के तृतीय पट्टाचार्य श्री सन्मतिसागर जी की परम शिष्या हैं तथा उनके संघ में गत २५ वर्षों से भी अधिक समय से हैं। उनके द्वारा जारी की गई अपील को आचार्य श्री का अनुमोदन अवश्य ही प्राप्त होगा।

इसी संदर्भ में अंकलीकर वाणी (२० अक्टूबर, २००२) में इसी परम्परा की प्रथम गणिनी आर्यिका श्री विजयमती माताजी द्वारा आचार्य अंकलीकर जी के १३७वें जन्म जयंन्ती महोत्सव के अवसर पर जारी की गई उनकी दीक्षा जयन्ती मनाने की अपील निम्नांकित रूप में प्रकाशित हुई थी–

"उन परम पूज्य विश्व वंद्य महामना, प्रातः स्मरणीय मुनि कुंजर, आदर्श तपस्वी, अप्रतिम उपसर्ग विजेता महामुनि, **कलिकाल तीर्थंकर** आचार्य परमेष्ठी श्री आदि सागर जी महाराज अंकलीकर का ९०वां दीक्षा दिवस ६ दिसम्बर, २००२ को अपनी शक्ति के अनुसार आयोजन आयोजित करके सातिशय पुण्य भागी बनें।"

यह दृष्टव्य है कि इन दोनों अपीलों की भाषा प्रायः एक सी है तथा इनमें दिवंगत तथाकथित कलिकाल तीर्थंकर अंकलीकर जी के दीक्षा दिवस व समाधि दिवस को (तीर्थंकर के कल्याणकों की तर्ज पर) मनाने की अपील की गई है। आचार्य अंकलीकर जी का समाधिमरण २६ फरवरी, १९४४ को हुआ था। हमें खेद है कि हमें इन महामुनि के दर्शनों का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। कदाचित्

उनका विहार दक्षिण भारत तक ही सीमित रहा था, यद्यपि अब उनके शिष्यानुशिष्यों द्वारा यह प्रचारित किया जा रहा है कि उन्होंने अपने विशाल संघ सहित सम्मेदशिखर सहित सभी तीर्थों की यात्रा की थी, पर उस समय धार्मिक पत्र–पत्रिकाओं में ऐसा कोई समाचार पढ़ने–सुनने में आया हो, स्मरण नहीं आता।

ब्र. मैना तथा गणिनी आर्यिका श्री विजयमती जी ने आचार्य अंकलीकर जी का स्मरण अनेक विशेषणों से अलंकृत करके किया है जो अपने गुरुवर्य या गुरुवानुगुरू महाराज के प्रति उनकी श्रद्धा भक्ति की अभिव्यक्ति है। किन्तु उन्होंने आचार्य श्री को कलिकाल तीर्थंकर भी घोषित किया है जिस पर गंभीरता पूर्वक विचार किया जाना अपेक्षित है।

जैन पौराणिक अवधारणा में समय चक्र को १० कोड़ाकोड़ी सागर वर्ष प्रमाण वाले अवसर्पिणी तथा उपसर्पिणी–दो महाकाल खण्डों में विभाजित किया गया है जिनमें प्रत्येक में छह आरे होते हैं जिन्हें प्रचलित भाषा में क़ाल (क्रमशः पहला काल, दूसरा काल आदि) कहा जाता है। वर्तमान में अवसर्पिणी महाकाल खण्ड के पंचम काल का प्रवर्तन हो रहा है जिसका आरंभ भगवान महावीर के निर्वाण के तीन वर्ष ८ महीने बाद से हुआ माना जाता है।

अवसर्पिणी महाकाल खण्ड में ६ कोड़ाकोड़ी सागर वर्ष विस्तार वाले प्रथम तीन कालों में भोगभूमि अवस्था का प्रवर्तन रहता है तथा अंतिम तीन कालों में ही कर्मभूमि का प्रवर्तन रहता है। इनमें भी चतुर्थ काल की अवधि ४६ हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागर वर्ष होती है तथा पांचवे व छठे काल की अवधि मात्र २३,२३ हजार वर्ष। चतुर्थ काल में ही सभी मोक्ष गामी जीवों का जन्म होना माना गया है। इस काल में चरम आध्यात्मिक उत्कर्ष की संभावनाएं रहती हैं। वैदिक अवधारणा में इस महाकाल खण्ड को ६ के बजाय चार युगों, यथा कृत, त्रेता, द्वापर, तथा कलियुग में बांटा गया है और इस समय कलियुग या कलिकाल का प्रवर्तन चल रहा है जिसका आरंभ महाभारत युद्ध के ३५ वर्ष बाद महाराज परीक्षित के राज्यारोहण से माना जाता है। अतः जैन अवधारणा के चतुर्थ काल के अंतिम भाग में जन्मे २३वें व २४वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ व भगवान महावीर वैदिक अवधारणा के कलियुग में ही जन्मे होने के कारण कलिकाल तीर्थंकर भी कहे जाते हैं।

जैन परम्परा में पूरे अवसर्पिणी महाकाल खण्ड में कुल २४ ही महानतम पुण्यात्मा जीव तीर्थंकर होते हैं तथा वर्तमान चौबीसी के अन्तिम तीर्थंकर भगवान महावीर स्वामी थे जो अब से २५२६ वर्ष पूर्व मोक्ष गमन कर चुके हैं और अब अगले

तीर्थंकर भावी उत्सर्पिणी काल खण्ड के तीसरे काल में ही जन्मेंगे। इससे पहिले किसी तीर्थंकर के जन्म लेने की कोई संभावना ही नहीं है। यहाँ यह भी स्पष्ट करना उचित होगा कि शरीर अवगाहना व आयुकर्म के स्थिति बंध के अतिरिक्त सभी तीर्थंकर बल, वीर्य, ज्ञान एवं अन्य सभी गुणों में सर्वप्रकार समान होते हैं। वर्तमान का कोई भी महान से महान आचार्य/मुनि कलिकाल तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ व महावीर स्वामी के बल, वीर्य, ज्ञान व अन्य गुणों की रंचमात्र भी बराबरी नहीं कर सकता। **उसे कलिकाल तीर्थंकर संबोधित करना इन दोनों तीर्थंकरों का घोर अवर्णवाद है।**

हमें आश्चर्य होता है कि जब एक वरिष्ठ आर्यिका जी जो अंकलीकर परम्परा की प्रथम गणिनी आर्यिका के संबोधन से गौरवान्वित की जाती हैं तथा एक गृह त्यागी ब्रह्मचारिणी जी जो दीर्घ काल से इसी परम्परा के तृतीय पट्टाधीश आचार्य श्री के संघ में रहते हुए उनके सीधे सम्पर्क में रहती हुई इस घोर तीर्थंकर अवर्णवाद की दोषी हो रही हैं। दोषी तो इसका अनुमोदन करने वाले अन्य सभी भी हो रहे हैं। कदाचित् जिस प्रकार वर्तमान में रुपए का अवमूल्यन हो उसकी क्रय शक्ति पुराने एक नए पैसे से भी कम रह गई है तथापि वह रुपया ही कहलाता है, उनकी दृष्टि में वर्तमान में तीर्थंकर पद का भी अवमूल्यन किया जा सकता है।

पारस सदन, आर्य नगर
लखनऊ– २२६ ००४

**– अजित प्रसाद जैन**
**प्रधान सम्पादक**

---

# महावीर वाणी

**भासियव्वं हियं सच्चं** – उत्तराध्ययन, १६–२६
(हितकारी सत्य वचन बोलना चाहिये।)

**तहेव काणं काणेति, पण्डगेति वा।**
**वाहियं वा वि रोगिति, तेणं चोरेति नो वए।**

**–दशवैकालिक**, ७–१२

(काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी और चोर को चोर कहना यद्यपि सत्य है तथापि ऐसा कहना अनुचित है, क्योंकि उससे उन आत्माओं को दुख पहुँचता है।)

**सच्चं लोगम्मि सारभूयं**
(सत्य इस लोक में सार भूत पदार्थ है।)

**तं सच्चं खु भगवं –प्रश्नव्याकरण**, २२
(वह सत्य ही भगवान है।)

# जैन धर्म और नैतिकता

**– डॉ० जिनेन्द्र जैन**

प्राचीन विद्वानों ने सदाचार को विभिन्न रूप में मान्य किया है। सदाचार को ही नैतिकता कहा जा सकता है। नैतिक चेतना का आशय शुभ–अशुभ, उचित–अनुचित, वांछनीय–अवांछनीय अनुभूतियों से है। ये अनुभूतियां सार्वभौम हैं। अपनी–अपनी रुचि और संस्कारों के अनुसार भले–बुरे की चेतना हम सभी को होती है। नैतिक निर्णयों का आधार कोई न कोई आदर्श होता है। आदर्श के अनुकूल होने से कोई कार्य कर्त्तव्य और प्रतिकूल होने से कोई कार्य अकर्त्तव्य कहलाता है। आचार व्यक्ति और समाज दोनों के कर्त्तव्याकर्त्तव्यों का विवेचन करता है इसी कारण इसे नीति विज्ञान भी कहा जाता है।

श्रेष्ठ आचार, मर्यादित आचार एवं जिस व्यवहार को संमाज ने प्रमाणित किया है कि यह उचित है, जिससे दूसरे प्राणी को हानि न पहुंचे वही आचार नैतिक है। जैन दर्शन में ज्ञान की अपेक्षा चारित्र का ही अंतिम महत्त्व स्वीकार किया गया है। कुन्दकुन्दाचार्य ने **प्रवचन सार** में लिखा है कि चारित्र ही धर्म है। जैन दर्शन का साध्य विचार नहीं आचार है, ज्ञान नहीं चारित्र है। वाक् विलास नहीं आत्मशुद्धि है। अहिंसा का वास्तविक अर्थ है जीव मात्र में समस्त का दर्शन। जीव चाहे स्थावर हो, जंगम हो, पशु हो, पक्षी हो, मनुष्य हो, शूद्र हो, ब्राह्मण हो, क्षत्रिय हो, गोरा हो, काला हो, भारतीय हो, अभारतीय हो–सभी में समानता का व्यवहार करना। अहिंसा के विकास से ही वीतरागत्व का प्रादुर्भाव होता हैं। आत्मशुद्धि की व्यक्तिगत साधना, मुक्ति प्रक्रिया और विश्वशांति की स्थापना की लोकेषणा का मूल मंत्र अहिंसा है एवं अहिंसा से बढ़कर कोई नैतिक सिद्धांत नहीं हो सकता। चरित्र ही धर्म है। धर्म नैतिक सिद्धांतों के रूप में ही समझा गया है। हिंसा, झूठ, चोरी, अब्रह्म, परिग्रह इनसे विमुख होना व्रत है। ये जैन–आचार के पांच नैतिक और मौलिक स्तम्भ हैं। इन व्रतों के एक अंश का पालन अणुव्रत तथा पूर्ण पालन महाव्रत कहलाता हैं। अणुव्रतों का पालन समाज में रहते हुए संभव है। इसलिए नैतिकता की दृष्टि से अणुव्रत अपना विशिष्ट स्थान रखते हैं। समाज में शांति व्यवस्था बनाये रखने के लिए आत्म अनुशासन की विशेष आवश्यकता होती है। वह अनुशासन नैतिक जागृति से ही आ सकता है। यह कार्य जैन चिंतन परम्परा में अणुव्रत के माध्यम से बड़े सुंदर ढंग से किया गया है। जैन–दर्शन के अणुव्रत–सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य समाज में नैतिक जागृति

के महान स्तम्भ हैं। हिंसा आदि पाप करने से हमें लोक तथा परलोक में अनेक आपत्तियां प्राप्त होती हैं और निन्दा भी होती है इसलिए इनको छोड़ना ही अच्छा है। जैन नैतिक सिद्धांत अहिंसा व्रत के माध्यम से कहता है कि किसी प्राणी मात्र को मन, वचन, काय से उसके शरीर या मन को नहीं दुखाना चाहिए अन्यथा वह हिंसा पाप का भागी होगा। किसी को प्रताड़ित किये जाने या मारने का समर्थन करना, उससे प्रसन्न होना उचित नहीं है, ऐसी दशा में उस एक व्यक्ति के द्वारा की जाने वाली हिंसा का फल वे अनेक व्यक्ति भी भोगेंगे। कोई व्यक्ति बाहर दिखाने के लिए किसी को संकट या दुख से बचाने का प्रयास करता है किन्तु उसकी भावना उसका बुरा करने की है अथवा किसी ने अन्य के प्रति दुर्भावनावश कोई कार्य किया किन्तु सौभाग्यवश उसका भला हो गया तो ऐसी स्थिति में कार्यकर्ता को दुर्भावना का बुरा फल ही प्राप्त होगा, ऐसे ही कोई सद्भावनावश गुरु शिष्य को या माता–पिता अपनी संतानों को उनकी भलाई के लिए डांटते हैं या दण्ड भी देते हैं तो बाह्य दृष्टि से उनके कार्य भले ही हिंसक रूप में दिखाई दें किन्तु उन्हें फल उनकी सद्भावनाओं का ही प्राप्त होगा अथवा कोई चिकित्सक रोगी को स्वस्थ करने के लिए दवा दे या चीर–फाड़ करे किन्तु रोगी अच्छा न होकर मर जाये तो भी चिकित्सक को फल अहिंसा का ही मिलेगा। अतः मन के भावों से भी प्राणियों पर समभाव या दयाभाव का होना आवश्यक है। सत्यव्रत की भावनाओं के अन्तर्गत उल्लेख है कि क्रोध, लालच, भय और हंसी से मनुष्य झूठ बोल सकता है इसलिए इनसे बचते रहना चाहिए। जब बोले तब ऐसी सावधानी से बोलना चाहिए कि कोई ऐसी बात नहीं निकल जाए जो दूसरे को कष्टदायक हो। सत्यव्रत के अतिचार नैतिकता के संदर्भ में अधिक प्रासंगिक हैं जैसे झूठा और अहितकर उपदेश नहीं देना, स्त्री–पुरुष की एकांत में की गई क्रिया को प्रगट नहीं करना, दूसरों को फंसाने के लिए झूठे दस्तावेज तैयार नहीं करना, किसी की धरोहर का अपहरण नहीं करना। चुगली, हास्य, कठोर वचन, दुविधाजनक व शास्त्र विरुद्ध वचन तथा अन्य समस्त प्रकार के निंद्य वचनों को गर्हित वचन कहते हैं। इन वचनों के प्रयोग करने में कषाय का उद्भव पाया जाता है। अतः ये सब असत्य वचन हैं जिनका व्रती त्याग करता है। मार डालूंगा या मारो कहना, छेदने–भेदने, मारने–पीटने, घसीटने, हिंसा गर्भित वाणिज्य करने, चोरी करने, जेब काटने, झांसा देने आदि पाप प्रवर्तक वचनों को उच्चरित करना सावद्य वचन समझना चाहिए, जो अहिंसा व्रती को त्याज्य है। दूसरों को अप्रीतिकारक, भयोत्पादक, वैर–शोक जनक या कलहकारक, संतापजनक एवं

अन्य दुर्वचनों को कहना अप्रिय वचन कहा जाता है। दो मित्रों, भाइयों, जातियों, समाजों या देशों में फूट डालने या लड़ाने वाले अन्य प्रकार के शोक, संताप, भय, पीड़ा आदि को जन्म देने वाले वचन प्रिय न होने वाले अप्रिय वचन कहलाते हैं जिनका कभी भी प्रयोग नहीं करना चाहिए, क्योंकि ये सब असत्य के ही अंग हैं। चोरी के लिए चोर को प्रेरणा करना या कराना, उसका उपाय बताना, चोर के द्वारा चुराये गये माल को खरीदना, राजा की आज्ञा के विरुद्ध चलना, प्रवेशकर, आयकर, विक्रयकर आदि राजस्व नहीं देना, लेन–देन के बांट, तराजू वगैरह को घट–बढ़ रखना, कीमती वस्तु में कम कीमत की वस्तु मिलाकर असली भाव में बेचना यह अचौर्यव्रत के अतिचार हैं। इनका त्याग करना चाहिए। धनादि वस्तुएं मनुष्यों के एक प्रकार से बाह्य प्राण कहलाती हैं। यहां तक कि कोई–कोई लोग उन्हें ग्यारहवां प्राण भी कहते हैं क्योंकि वे उन्हें प्राणों से भी अधिक प्रिय होती हैं। अतः जो व्यक्ति किसी की धनादि वस्तु को अपहरण करता है वह एक प्रकार से उसके प्राणों का ही अपहरण करता है। व्यभिचारिणी स्त्रियों के यहाँ आना–जाना, उनसे लेन–देन आदि का व्यवहार रखना, कामसेवन के लिए निश्चित अंगों को छोड़कर अन्य अंगों से काम सेवन करना और कामसेवन की तीव्र अभिलाषा रखना, ब्रह्मचर्य अणुव्रत के अतिचार हैं। इनका त्याग करना चाहिए। अनैतिक कामातुरता को अशोभनीय एवं पाप का कारण बताया गया है। जैन दर्शन के अनुसार आर्थिक असमानता और अनावश्यक अनुचित संग्रह समाज के जीवन को अस्त–व्यस्त करनेवाला है। इनके लिए एक मनुष्य दूसरे मनुष्य का शोषण करता है। मनुष्य की इस लोभवृति के कारण समाज अनेक कष्टों का अनुभव करता है। परिग्रह के सब साधन सामाजिक जीवन में कटुता, घृणा और शोषण को जन्म देते हैं। अपने पास उतना ही रखना जितना आवश्यक है बाकी सब समाज को अर्पित कर देना अपरिग्रही पद्धति है। कहा गया है ''परस्परोपग्रहो जीवानाम्'', आपस में एक–दूसरे की सहायता करना जीव द्रव्य का उपकार है, उसका कार्य है, उसका कर्तव्य है। जैन धर्म के अनुसार व्यक्ति और समाज का उत्थान उच्च चारित्र अर्थात नैतिकता के अभाव में संभव नहीं है। गृहस्थों के लिए जो आचार–संहिता निरूपित की गयी उस नैतिक जागृति से व्यक्ति का समुचित विकास होकर समाज में शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व की स्थापना होती है। जैन दर्शन में जो उत्तम क्षमा–मार्दव–आर्जव–सत्य–शौच–संयम–तप–त्याग–आकिंचन–ब्रह्मचर्य रूप दस धर्मों के पालन का निर्देश मिलता है वह किसी भगवान की भक्ति या यज्ञ, कर्मकाण्ड से सम्बंधित नहीं, बल्कि नैतिक व आचार सिद्धांत ही है।

नैतिक मूल्यों के संदर्भ में जैन दर्शन व्यक्ति और उसके सामाजिक दायित्व पर पूर्ण बल देता है। सर्वप्रथम व्यक्ति का आत्मज्ञ होना जरूरी है, क्योंकि इसके बिना निर्भयता प्राप्त नहीं हो सकती और निर्भयता के बिना सामाजिक दायित्वों का निर्वाह भली प्रकार नहीं हो सकता। आत्मा के स्वरूप एवं धर्म तत्व व संसार के स्वरूप को जानने से निर्भयता प्राप्त होती है। आत्मा का स्वरूप छह द्रव्यों, सात तत्व व नव पदार्थ द्वारा ज्ञात होता है। अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचित्व, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, लोक एवं बोधि दुर्लभ और धर्म इन बारह भावनाओं के चिंतवन से संसार व आत्म के स्वरूप को पहचानकर निर्भयता का संचार होता है। वैचारिक मतभेद समाज में द्वन्द को जन्म देते हैं, जिसके कारण समाज रचनात्मक प्रवृतियों को विकसित नहीं कर सकता है। वैसे तो वैचारिक मतभेद मानव मन की सृजनात्मक मानसिक शक्तियों का परिणाम होता है पर इसको उचित रूप से न समझने से मनुष्य के आपसी मतभेद संकुचित संघर्ष के कारण बन जाते हैं और इससे समाज–शक्ति विघटित होती है। द्वन्द व संघर्ष के निवारण हेतु जैन दर्शन का अनेकान्त एवं स्याद्वाद सिद्धांत महत्वपूर्ण है, जिसके अनुसार वस्तु एक पक्षीय न होकर अनेक पक्षीय होती है, वह अनेकान्तिक है, एकान्तिक नहीं। अनेकान्त एवं स्याद्वाद के इस बौद्धिक नैतिक मूल्य से समाज में विचारों का घर्षण ग्रहणीय बन जाता है। सच्चा अनेकान्तवादी किसी दर्शन से द्वेष नहीं करता वह सम्पूर्ण दृष्टिकोणों (दर्शनों) को वात्सल्य दृष्टि से देखता है।

जैन धर्म व्यक्ति के नैतिक विकास के लिए आत्मनिरीक्षण पर जोर देता है। इसके बिना अपने दोषों की ओर दृष्टिपात करने का अवसर ही नहीं मिलता। आत्मनिरीक्षण दैनिक जीवन का लेखा–जोखा है। अपने दोषों को देखने के लिए यह एक वैज्ञानिक यंत्र है, जिससे व्यक्ति घृणा, द्वेष, ईर्ष्या, मान, मत्सर प्रभृति दुर्गुणों से अपनी रक्षा कर सकता है।

समस्त प्राणियों को उन्नति के अवसरों में समानता प्रदान करना जैन धर्म का सामाजिक सिद्धांत है। जैन मान्यतानुसार समाज व्यवस्था विश्व प्रेम की नींव पर अवलम्बित है। परस्पर भाई–भाई का व्यवहार करना, एक–दूसरे के दुख दर्द में सहायक होना, दूसरे को ठीक अपने समान समझना, हीनाधिक भावना का त्याग करना, अन्य व्यक्तियों के सुख–सुविधाओं को समझना तथा उनके विपरीत आचरण न करना जैन धर्म की समाज व्यवस्था है। जैन परम्परा में केवल मनुष्य के साथ ही भाईचारे के संबंध स्थापित करने को नहीं कहा गया है बल्कि पशु–पक्षी, कीड़े–मकोड़े आदि समस्त प्राणियों के साथ भ्रातृत्व भाव का संबंध

स्थापित करने का निर्देश है। प्राचीन विचारधारा के दो मूल प्रश्न थे– पहला सृष्टि के रहस्य का उद्घाटन और दूसरा आचार शास्त्र का विवेचन। मनुष्य के विचारों से उसके आचार भिन्न होते हैं। विचारों का सम्बन्ध मनुष्य के मस्तिष्क से है और अच्छे आचारों का सम्बंध उसकी संस्कृति से है। आचार शास्त्र आध्यात्मिक उन्नति की बात करता है। यह ठीक है कि आचारों का संबंध मनुष्य की आध्यात्मिक उन्नति से है। परन्तु ये नैतिक सिद्धांत मनुष्य के मेरुदण्ड हैं। उनके पालन से मनुष्य का सर्वांगीण विकास होता है। जैन धर्म ही नहीं अन्य भारतीय धर्म भी नैतिक सिद्धांतों को अध्यात्म व धर्म के आधार पर निर्मित करते हैं जिससे सिद्धांतों के पालन करने के लिए उनमें निष्ठा बनी रहे साथ ही धर्मपालन हो सके लेकिन यह सार्वभौमिक सिद्धांत नहीं बन सके क्योंकि संकीर्णता इसमें बाधक है। निश्चित तौर पर जैन धर्म के नैतिक नियम विश्व–बन्धुत्व की भावना का प्रचार करने की क्षमता रखते हैं।

**संविदा व्याख्याता**
**प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग**
**डॉ० हरीसिंह गौड़ विश्वविद्यालय, सागर**

---

# रात्रि भोजन के दोष

मेधां पिपीलिका हन्ति यूका कुर्याज्जलोदरम्।
कुरुते मक्षिका वान्तिं कुष्ठरोगं च कौलिकः।।
कण्टको दारुखण्डश्च वितनोति गलव्यथाम्।
व्यञ्जनान्तर्निपतितस्तालु विंध्यति वृश्चिकः।।
विलग्नश्च गले बालः स्वरभङ्गाय जायते।
इत्यादयो दृष्टदोषाः सर्वेषां निशि भोजने।।

**–योगशास्त्र, ३/५०–५२**

(भावार्थ– भोजन में यदि चींटी खायी जाये तो मेधा का घात करती है, जूं के खाने से जलोदर होता है। मक्खी खा लेने से वमन (उल्टी) होता है। मकड़ी खा लेने से कुष्ठ रोग होता है। काँटा या लकड़ी से गले में कष्ट होता है। यदि विच्छू भोजन में गिर जाये तो तालु को डंक से बींध देता है। बाल गले में लगकर स्वर भंग कर देता है। इत्यादि दोष रात्रि भोजन में देखे जाते हैं, ऐसा शास्त्रकार का कथन है। अतः भोजन अच्छी तरह देखकर उपर्युक्त से बचते हुए किया जाना स्वास्थ्य के लिये श्रेयस्कर है।)

# उत्तराध्ययन सूत्र में तीर्थंकरों के उल्लेख और कथाएं

– डॉ. राजमल वोरा

श्वेताम्बर आगम ग्रन्थ **उत्तराध्ययन सूत्र** के ३६ अध्यायों में १४ अध्याय ऐसे हैं, जिनमें कथाएं हैं। वे अध्याय हैं– ७, ८, ९, ,१२, १३, १४, १८, १६, २०, २१, २२, २३, २५ और २७। ये सभी कथाएं धर्म से सम्बन्धित होने के कारण इन्हें धर्मकथाएं भी कहा गया है। इन कथाओं में तीर्थंकरों की कथाएं भी हैं। भगवान महावीर से पहले जो तीर्थंकर हुए हैं, उनमें से जिन तीर्थंकरों की कथाएं या उल्लेख इस आगम ग्रंथ में हैं, उनका विवरण यहाँ प्रस्तुत है। प्रधान रूप से १८वें अध्याय में तीर्थंकरों की जानकारी अधिक मिलती है। अरिष्टनेमि और राजमती का कथानक २२वें अध्याय में है। अन्य कथाएं भी हैं, उनमें लोककथाएं तथा मुनियों की कथाएं हैं। सभी कथाएं बोध–प्रदान करने वाली हैं। चूंकि ये कथाएं उपलब्ध स्रोतों में से अधिक प्राचीन हैं, इस नाते इनका अपना महत्व है और बना रहेगा।

अठारहवें अध्याय का नाम 'संजयीय' है। इसे 'संयतीय' भी कहा गया है। इसमें कुल–५४ गाथाएं हैं। आरम्भ की १८ गाथाओं में संजय (या संयति) राजा के शिकारी से पंचमहाव्रतधारी निर्ग्रन्थ मुनि के रूप में हृदय परिवर्तन की कथा दी गई है जो निम्नवत है–

कम्पिल्य नगर में संजय नाम का राजा था। उसके पास चतुरंगी सेना थी। एक बार वह अपने अश्व पर आरूढ़ होकर केशर नाम के उद्यान की ओर बढ़ता गया। वहां उसने भयभीत मृगों को भागते हुए देखा। उसी उद्यान में तपोधर अनगार ध्यान में बैठे हुए थे। उसने मृगों का वहाँ पर वध किया। अनगार का नाम गद्दभालि (गर्दभालि) बतलाया गया है। मृगों का वध करने और सामने मुनि को विराजमान देखकर राजा भयभीत हो गया। उसे लगा, मुनि मुझे मेरे अपराध के लिए क्षमा नहीं करेंगे। उसने अश्व को छोड़ दिया। मुनि के निकट पहुँचा और चरणों में विनय से वंदना की और क्षमा मांगी। मुनि अपने में मग्न थे। उत्तर न मिलने से राजा और भयभीत हुआ। बोला– "भगवन्, मैं संजय हूं। अपराध क्षमा हो।" मुनि का मौन था। तुरन्त उत्तर नहीं दिया। बाद में अभय दिया और अभयदाता बनने के लिए कहा। मुनि के उपदेश से राजा का हृदय–परिवर्तन हुआ। राज्य का परित्याग करके वह संजय राजा भगवान् गर्दभालि अनगार के

पास जिनशासन में प्रव्रजित हो गया। उन्नीसवीं गाथा इस प्रकार है–

संजओ चइंउ रज्जं निक्खन्तो जिणसासणे।
गद्दभालिस्स भगवओ अणगारस्य अन्तिए।।१६।।

२०वीं गाथा से ३३वीं गाथा तक प्रश्नोत्तर हैं। २३वीं गाथा से २७वीं गाथा तक क्रियावादी चर्चा–विचारणा होने का वर्णन है। तदनन्तर ३३वीं गाथा तक संवाद रूप में परलोक के अस्तित्व तथा क्रियावाद से सम्बंधित विवरण है।

३४वीं गाथा से चक्रवर्ती राजाओं के उल्लेख हैं जो इसी प्रकार उपदेश सुनकर प्रव्रजित हुए थे। इन चक्रवर्ती राजाओं में तीर्थंकर भी हैं। इन चक्रवर्ती राजाओं का उल्लेख उदाहरण स्वरूप हुआ है। उल्लेख की गाथाओं की संख्या और नाम इस प्रकार हैं– भरत चक्रवर्ती (प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र) गाथा सं. ३४; सगर चक्रवर्ती– गाथा सं. ३५; चक्रवर्ती मधवा– गाथा सं. ३६; सनत्कुमार चक्रवर्ती–गाथा सं. ३७; शान्तिनाथ चक्रवर्ती–गाथा सं. ३८; कुन्थुनाथ– (इक्ष्वाकुकुल के श्रेष्ठ राजा) गाथा सं. ३६; अरनाथ (नरेश्वरों में श्रेष्ठ राजा) गाथा सं. ४०; महापद्म चक्रवर्ती– गाथा सं. ४१; हरिषेण चक्रवर्ती–गाथा सं. ४२; जय चक्रवर्ती–गाथा सं. ४३; दशार्ण भद्र राजा–गाथा सं. ४४; नमि राजर्षि– गाथा सं. ४५; चार श्रेष्ठ राजा– कलिंग देश में करकण्डु, पांचाल देश में द्विमुख, विदेहदेश में नमिराज और गांधार देश में नग्गति–गाथा सं. ४६ और ४७; सौवीर नृप उदायन राजा–गाथा सं. ४८; काशीराज (नन्दन)– गाथा सं. ४६; विजय राजा–गाथा सं. ५० और राजर्षि महाबल–गाथा सं. ५१।

इस अध्याय की अन्तिम तीन गाथाओं (५२, ५३ तथा ५४) में क्षत्रिय मुनि का सिद्धान्तों के अनुसार उपदेश है।

गाथा संख्या ३४ से गाथा संख्या ५१ तक जो नाम मिलते हैं, उन सबका पूरा विवरण नहीं मिलता। नाम की महत्ता का बोध उनमें है, किन्तु उनका कथात्मक परिचय नहीं दिया गया है। इन नामों का संदर्भ इन गाथाओं की वृत्ति तथा टीका लिखने वालों ने दिया है। संदर्भों को लिखते समय आवश्यक कथानक लिखा गया है और वंश परिचय भी जो ज्ञात रहा है, वह लिखा है।

चक्रवर्ती भरत के संदर्भ में ऋषभदेव (प्रथम तीर्थंकर) का नाम आया है। सगर चक्रवर्ती के संदर्भ में बतलाया गया है कि अयोध्या नगरी में इक्ष्वाकुवंशीय राजा जितशत्रु और उनकी रानी विजया थे। इन दोनों के पुत्र का नाम 'अजित' था जो बाद में द्वितीय तीर्थंकर अजितनाथ हुए। जितशत्रु राजा के छोटे भाई का नाम सुमित्र था (युवराज था) और उसकी रानी यशोमती थी। इन दोनों के पुत्र का नाम सगर था, जो बाद में चक्रवर्ती राजा हुआ। दूसरे तीर्थंकर के बाद सोलहवें तीर्थंकर

शांतिनाथ का नाम आता है। शांतिनाथ तीर्थंकर के पूर्व जन्म की कथा मेघरथ राजर्षि की कथा है। मेघरथ का जीव हस्तिनापुर नगर के विश्वसेन राजा की रानी अचिरादेवी के गर्भ से अवतरित हुआ। ये शान्तिनाथ तीर्थंकर हुए। शांतिनाथ के बाद कुन्थुनाथ (सत्रहवें तीर्थंकर) का नाम मिलता है। कुन्थुनाथ का पूर्व वृत्त दिया गया है। हस्तिनापुर के राजा सूर की रानी श्रीदेवी की कुक्षि से ये अवतरित हुए। कहते हैं प्रभु जब गर्भ में थे, उस समय से ही सभी शत्रु राजा कुन्थु सम अर्थात् अल्पसत्व वाले हो गए थे। माता ने भी सपने में कुत्स्थ अर्थात् पृथ्वीगत रत्नों का स्तूप देखा था। इससे इनका नाम कुन्थु रखा गया। अरनाथ (अठारहवें तीर्थंकर) का परिचय दिया गया है। जम्बूद्वीप के पूर्व विदेह में वत्स नामक विजय के अन्तर्गत सुसीमा नगरी थी। उस नगरी के राजा धनपति ने जिनशासन को स्वीकार किया और श्रेष्ठ देव हुए। यह अरहनाथ का पूर्व जीवन का वृत्त है। बाद में वे ही हस्तिनापुर के सुदर्शन राजा की रानी देवी की कुक्षि में अवतरित हुए। कहते हैं, माता ने स्वप्न में रत्न का अर (चक्र का आरा) देखा, तदनुसार पुत्र का नाम 'अर' रखा गया। इस तरह ऋषभदेव (भरत के पिता)/ अजितनाथ/ शान्तिनाथ/ कुन्थुनाथ/ तथा अरनाथ पांच तीर्थंकरों के वृत्त मिलते हैं। ये वृत्त या विवरण संदर्भो के रूप में मिलते हैं।

उत्तराध्ययन सूत्र का २२ वां अध्याय अरिष्टनेमि (तीर्थंकर) से सम्बंधित है। इस अध्याय की ५१ गाथाओं में अरिष्टनेमि का जीवन–वृत्त दिया हुआ है। ऊपर जिन पांच तीर्थंकरों का उल्लेख हुआ है, उनसे अधिक विस्तार में अरिष्टनेमि का इतिवृत्त है।

**– 'रत्नदीप', ५, मनीषा नगर,**
**केसरसिंहपुरा, औरंगाबाद (महा.) ४३१००५**

---

## जिनवाणी

**नापुटठो वागरे किंचि पुटठो वा नालियं वए।**
**कोहं असच्चं कुव्वेजा धारेज्जा पियमप्पियं।।**

– **उत्तराध्ययन**, १–१४

(बिना पूछे कुछ भी न बोले। पूछने पर असत्य न बोले। क्रोध न करे। आ जाए तो उसे विफल कर दे। प्रिय और अप्रिय को धारण करे – उन पर राग और द्वेष करे।)

**न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं न निरट्ठं न मम्मयं।**
**अप्पणट्ठा परट्ठा वा उभयस्सन्तरेण वा।।**

–**उत्तराध्ययन**, १–२५

(किसी के पूछने पर भी अपने, पराये सा दोनों के प्रयोजन के लिये अथवा अकारण ही सावद्य न बोले, निरर्थक न बोले और मर्मभेदी वचन न बोले।)

# जैन दर्शन में जीव का कर्तृत्व और भोक्तृत्व विचार

– डॉ. सूरजमुखी जैन

जैन दर्शन में जीव को कर्ता और भोक्ता माना गया है। कर्ता से तात्पर्य है किसी क्रिया को करने वाला और भोक्ता से तात्पर्य है फल को भोगने वाला। आचार्य कुन्दकुन्द तथा आचार्य नेमिचन्द्र ने ज़ीव की अन्य विशेषताओं के साथ उसे कर्ता तथा भोक्ता भी बताया है।[१]

यद्यपि शुद्ध निश्चय नय से जीव केवल ज्ञाता दृष्टा है, किन्तु व्यवहार नय से अनादिकाल से कर्मों से संयुक्त जीव अपने कर्मों का कर्ता कहा जाता है। इसी प्रकार शुद्ध निश्चय नय से वह रागादि विकल्पों से रहित अविनाशी आत्मानन्द का भोक्ता है किन्तु व्यवहारनय से संसारावस्था में शुभ और अशुभ कर्मों से होने वाले सुख और दुःख का भोक्ता है।[२]

## कर्तृत्व विचार–

वस्तुतः जीव और कर्म का सम्बन्ध अनादि है, न तो जीव कर्म को करता है न कर्म जीव को करते हैं।[३] व्यवहार नय से बीज और वृक्ष के समान कर्म और जीव के रागादिभाव एक दूसरे को करते हैं। जैसे बीज से वृक्ष होता है और पुनः वृक्ष से बीज की उत्पत्ति होती है उसी प्रकार कर्म के उदय से जीव के रागादि विकार भाव होते हैं और रागादि विकार भावों के निमित्त से कर्म बंधते हैं। अतः व्यवहारनय से जीव पुद्गल कर्मों का करने वाला कहा गया है, अशुद्ध निश्चय नय से वह चेतन कर्म रागद्वेषादि का तथा शुद्ध निश्चय नय से अपने शुद्ध ज्ञान दर्शन का कर्ता है। कहा गया है–

पुग्गल कम्मादीणं कत्तां ववहारदोदुणिच्छयदो।
चेदणकम्माणादा सुद्धणया सुद्धाभावाणं।[४]

प्रत्येक द्रव्य उत्पाद व्यय और ध्रौव्य गुणयुक्त है। द्रव्य का लक्षण करते हुए आचार्य उमास्वामी ने 'सद्द्रव्यलक्षणम्'[५] तथा 'उत्पादव्यय ध्रौव्ययुक्तं सत्' कहा है।[६] अर्थात् जो सत् है, अस्तित्व में है, वह द्रव्य है और जो है, वह उत्पाद व्यय ध्रौव्य सहित है। अतः प्रत्येक द्रव्य अपने पूर्व पर्याय का प्रतिक्षण परित्याग कर उत्तरोत्तर पर्याय को धारण करता है तथा द्रव्यरूप में वह नित्य है उसका कभी

उत्पाद और विनाश नहीं होता। प्रत्येक द्रव्य का परिणमन अपने स्वरूप में ही होता है, एक द्रव्य अन्य द्रव्यरूप कभी परिणमित नहीं होता। जीव कभी पुद्गल नहीं हो सकता तथा पुद्गल कभी जीव नहीं हो सकता। अतः प्रत्येक द्रव्य का अनन्तर पूर्ववर्ती परिणाम विशिष्ट द्रव्य उपादान कारण तथा अनन्तर उत्तरक्षणवर्ती परिणामविशिष्ट द्रव्य कार्य है। शुद्ध दशा में षट्गुण हानिवृद्धि रूप परिणमन निमित्त के बिना स्वत ही होता रहता है और अशुद्ध दशा में अन्य द्रव्य निमित्त कारण होते हैं। उदाहरण के लिये, स्वर्ण का मुकुट बनाया गया। यहां स्वर्ण द्रव्य की पर्याय का मुकुट पदार्थ में परिणमन हो गया। किन्तु इस परिणमन में उपादान कारण स्वर्ण है स्वर्ण स्वयं मुकुट रूप में परिणमित हुआ। इस परिवर्तन में स्वर्णकार तथा अन्य सामग्री भी निमित्त कारण हुए। जीव द्रव्य भी अपने चेतन कर्म राग द्वेष आदि को स्वयं करता है, पुद्गल कर्म उसमें निमित्त मात्र है। इसी प्रकार पौद्गलिक कार्माण वर्गणाएं भी स्वयं कर्मरूप में परिणत होती हैं। जीव के रागद्वेषादि चिद्विकार उसमें निमित्त मात्र होते हैं।[७]

जिस समय जीव राग द्वेष मोह भाव रूप परिणमन करता है, उस समय उन भावों का निमित्त पाकर पुद्गल द्रव्य स्वतः कर्म अवस्था को धारण कर लेते हैं। जो जीव देव, शास्त्र, गुरु, धर्म आदि में प्रशस्तराग रूप परिणमन करता है, उसके पुण्य कर्म का बंध होता है और जो अप्रशस्त रागद्वेष मोहरूप परिणमन करता है, उसके पाप कर्म का बंध होता है। जीव भी अपने रागद्वेषादि भावरूप स्वयं परिणमन करता है, ज्ञानावरणादि द्रव्यकर्म निमित्तमात्र होते हैं। जीव और पुद्गल का परिणमन एक दूसरे के निमित्त से होने पर भी जीव अपने भावों के द्वारा अपने ही परिणमन का कर्ता है, पुद्गल कर्म का कर्ता नहीं है, पुद्गल अपने ज्ञानावरणादि कर्मों का कर्ता है, जीव के भावों का कर्ता नहीं है। आचार्य कुन्दकुन्द ने भी **समयसार** में इसी भाव को व्यक्त किया है।[८]

जीव और पुद्गल दोनों में वैभाविकी शक्ति है। इसी शक्ति के कारण जीव मिथ्यात्व तथा रागद्वेषादि विभाव परिणमन स्वयं करता है और पुद्गल वर्गणाएं भी ज्ञानावरणादि रूप परिणमन स्वयं करती हैं। परन्तु जिस प्रकार मिट्टी के घड़े का उपादान कारण मिट्टी है और निमित्त कारण कुंभकार, दंड, चक्र, चीवर आदि हैं। यद्यपि घड़े का वास्तविक कर्ता मिट्टी है किन्तु कुंभकार आदि की निमित्त के बिना मिट्टी का परिणमन घड़े में रूप में नहीं हो सकता, उसी प्रकार जीव के रागादि भावों का कर्ता जीव ही है पुद्गल नहीं। किंतु जीव के रागादिरूप परिणमन में पौद्गलिक कर्म का निमित्त तथा पुद्गल वर्गणाओं के कर्मरूप

परिणत होने में जीव के रागादि विभावभावों का निमित्त आवश्यक है। एक दूसरे के निमित्त के बिना न तो जीव का विभाव भावरूप परिणमन हो सकता है, न पुद्‌गल वर्गणाओं का कर्मरूप परिणमन हो सकता है।

जीव के औपशमिक, क्षायिक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक ये पांच प्रकार के भाव होते हैं।[९] जीवत्व रूप पारिणामिक भाव के अतिरिक्त अन्य सभी भाव पौद्‌गलिक कर्म के निमित्त से होते हैं। कर्म का उदय होने पर होने वाले भाव औदयिक भाव, कर्मों का उपशम होने पर होनेवाले औपशमिक भाव, कर्मों के क्षय होने से होने वाले क्षायिक भाव, कुछ कर्मों के क्षय और कुछ के उपशम से होने वाले क्षायोपशमिक भाव, संपूर्ण कर्मों को क्षय करने की शक्ति रखने वाले जीव के भव्यत्व भाव तथा संपूर्ण कर्मों को क्षय करने की शक्ति से रहित जीव के अभव्यत्व पारिणामिक भाव होते हैं। कर्मों के निमित्त के बिना जीव के उक्त भाव नहीं हो सकते, अतः व्यवहार नय से भावों का कर्ता कर्मों को कहा जाता है। अतः कर्म जीव के भाव के कारण होते हैं और जीव के भाव कर्म के कारण होते हैं। किंतु न तो कर्म का कर्ता जीव के भाव हैं और न जीव के भावों का कर्ता कर्म है।[१०]

संपूर्ण लोक अनन्तानन्त पुद्‌गल वर्गणाओं से ठसाठस भरा हुआ है, जब जीव रागादि भावों से युक्त होता है, तब उसके चारों ओर स्थित कार्माण वर्गणाओं में से कुछ कार्माणवर्गणाएं कर्म रूप होकर जीव के साथ बंध जाती हैं।[११]

जैसे चन्द्रमा या सूर्य की प्रभा का निमित्त पाकर संध्या के समय आकाश में पुद्‌गल स्कंध अन्य किसी के द्वारा बिना किये ही अपनी शक्ति से विभिन्न वर्ण बादल, इन्द्रधनुष, मंडलाकार आदि अनेक रूप होकर परिणमन करते हैं, उसी प्रकार जीव द्रव्य के अशुद्ध चेतनात्मक भावों का निमित्त पाकर पुद्‌गलवर्गणाएं भी अपनी शक्ति से स्वतः ज्ञानावरणादि आठ कर्म रूप परिणमित हो जाती हैं।[१२] कर्मों का उदय आने पर जीव के रागद्वेषादि विकार भी जीव में स्वतः अपनी शक्ति से उत्पन्न हो जाते हैं।

## भोक्तृत्व विचार–

व्यवहार नय से जीव साता तथा असाता वेदनीय के उदय से इष्ट तथा अनिष्ट पांचों इन्द्रियों के विषयों से उत्पन्न सुख तथ दुःख को भोगता है, अशुद्ध निश्चय नय से अपने हर्ष तथा विषादरूप भावों को भोगता है तथा शुद्ध निश्चयनय से सम्यक्‌दर्शन, सम्यक्‌ज्ञान और सम्यक्‌चारित्र से उत्पन्न परमात्मस्वभाव अविनाशी आनन्दरूप सुखामृत को भोगता है।[१३]

जीव और पुद्गल कर्म अनादिकाल से एक दूसरे से सघन रूप से बंधे हुए हैं। पुद्गल वर्गणाएं ही उदयकाल में सुख दुःख रूप हो जाती हैं। व्यवहारनय से द्रव्य कर्म के उदय से प्राप्त इष्ट अनिष्ट पदार्थों को जीव भोगता है, वास्तव में तो वह अपने ही हर्ष विषादरूप परिणामों को भोगता है, और शुद्ध निश्चयनय से वह न बाह्य इष्ट अनिष्ट पदार्थों को भोगता है, न हर्ष विषाद रूप भावों को अपितु अपने चैतन्य भाव को ही भोगता है।

जीव के रागादिभावों का निमित्त पाकर पुद्गल वर्गणाएं पौद्गलिक कर्म का कर्ता तथा व्यवहारनय से जीव के भावों का कर्ता तो हो सकती हैं किन्तु भोक्ता केवल जीव ही है, कर्म भोक्ता नहीं हो सकते। क्योंकि जीव चेतन है, उसमें अनुभवन शक्ति है, कर्म जड़ है उसमें अनुभवन शक्ति नहीं है।[१४]

संसारी जीव मिथ्यात्व के कारण अपने ज्ञानावरणादि कर्मों के उदय से पुद्गल कर्म का कर्ता और भोक्ता बनकर अनादिकाल से संसार में परिभ्रमण कर रहा है। भव्य जीव का यह परिणमन कभी न कभी समाप्त हो जाता है किन्तु अभव्य जीव अनन्तकाल तक पंचपरावर्तन करते रहते हैं।[१५]

जब यह जीव स्वपर भेद विज्ञान से शरीरादि परद्रव्यों को पृथक् समझकर राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदि सभी प्रकार के विकारों से रहित होकर शुद्धात्मस्वरूप में तन्मय हो जाता है, तब वह अपने अन्तिम और समीचीन पुरुषार्थ अविनाशी मोक्ष सुख को प्राप्त कर कृतकृत्य हो जाता है।[१६] इस अवस्था में वह अपने शुद्ध अनन्त ज्ञान दर्शनादि भावों का कर्ता तथा अतीन्द्रिय अनन्त आत्म सुख का भोक्ता हो जाता है।

**— अलका, ३५, इमामबाड़ा, मुजफ्फरनगर**

---

१. जीवोत्ति हवदि चेदा उवओगविसेसदो पहूकत्ता।
भोत्ता य देहमत्तो ण हि मुत्तो कम्मसंजुत्तो।।

— आचार्य कुन्दकुन्द **पंचास्तिकाय**, २७

जीवो उवओगभओ तथा तथा अमुत्ति कत्ता सदेहपरिमाणो।
भोत्ता संसारत्थो सिद्धो सो विस्स सोऽढगई।।

— आचार्य नेमिचन्द्र, **वृहद् द्रव्यसंग्रह**।

२. यद्यपि भूतार्थनयेन निष्क्रियऽङ्कोत्कीण ज्ञायैकस्वभावोऽयं जीवस्तथा प्यभूतार्थनयेन मनोवचनकाय व्यापारोत्पादक कर्मसहितत्वेन शुभाशुभ कर्म कर्त्तृत्वात् कर्ता तथा शुद्धद्रव्यार्थिकनयेन रागादिविकल्पोपाधिरहित स्वात्मोत्थ सुखामृतभोक्ता

तथाप्यशुद्धनयेन तथाविध सुखामृतभोजना। भावाच्छुभाशुभकर्म जनित सुखदु:खभोक्तत्वात् भोक्ता।

— **वृहद् द्रव्यसंग्रह**, गाथा २ की ब्रह्मदेवकृत संस्कृत टीका

३. जोइन्दु: **परमात्मप्रकाश**, ५६

४. आचार्य नेमिचन्द्र: **द्रव्यसंग्रह**, ८

५. आचार्य उमास्वामी: **तत्वार्थ सूत्र**, ५—२६

६. वही ५, ३०

७. जीवकृतं परिणामं निमित्तमात्रं प्रपद्य पुनरन्ये।
स्वयमेव परिणमन्तेऽत पुद्गला: कर्मभावेन।।
परिणममानस्य चितश्चिदात्मकै: स्वयमपि स्वकैर्भावै:।
भवति हि निमित्तमात्रं पौद्गलिकं कर्म तस्यापि।
— आचार्य अमृतचन्द्र सूरि: **पुरुषार्थ सिद्धयुपाय**, १२, १३

८. जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवोवि परिणमइ।।
णवि कुव्वइ कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीव गुणे।
अण्णोण्णणिमित्तेणदु परिणामं जाण दोण्हं पि।

— आचार्य कुन्दकुन्द: **समयसार**, ८०—८१

९. औपशमिक क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक पारिणामिकौ च—

— आचार्य उमास्वामी: **तत्वार्थसूत्र** २, १

१०. कम्मेण विणा उदयं जीवस्स ण विज्झदे उवसमं वा
खइयं खओवसमियं तम्हा भावं तु कम्मकदं।।
भावो कम्मणिमित्तो कम्मं पुण भावकारणं हवदि।
ण दु तेसि खलु कत्ता ण विणा भूदा दुकत्तारं।।

— आचार्य कुन्दकुन्द: **पंचास्तिकाय**, ५८, ६०

११. ओगाढ़ गाढणिचिदो पोग्गलकम्मेहिं सव्वदो लोगो।
सुहमेहिं वादरेहिं ,य णंताणं तेहिं विविहेदिं।।
अप्पा कुणदि सहावं तत्थ गदा पोग्गला सहावे दिं।
गच्छन्ति कम्मभावं अण्णोण्णागाहमवगाढ़ा।।

— वही, ६४, ६५

१२. 'यथा हि स्वयोग्य चन्द्रार्क प्रभोपलंभे सन्ध्याभ्रेन्द्र चापपरिवेष प्रभितिभि: प्रकारै: पुद्गलस्कंधविकल्पा: कर्मन्तरनिरपेक्षा: एवोत्पद्यन्ते तथा स्वयोग्यजीव

परिणामोपलभे ज्ञानावरण प्रभितिभिः वहुभिः प्रकारैः कर्माण्यपि कर्मंतर निरपेक्षाण्येवोत्पद्यन्ते। इति

– अमृतचन्द्राचार्यः **पंचास्तिकाय**, गाथा ६६ की **तत्वप्रदीपिका** संस्कृत टीका।

१३. ववहारा सुह दुःखं पुग्गलकम्मफ्फलं पभुजेदि।
आदाणिच्छयणयदो चेदणभावं खु आदस्स।

– आचार्य नेमिचन्द्रः **द्रव्यसंग्रह**, ६

१४. तम्हा कम्मं कत्ता भावेणदि संजुदोध जीवस्स।
भोत्ता तु हवदि जीवो चेदगभावेण कम्मफलं।
– आचार्य कुन्दकुन्दः **पंचास्तिकाय**, ६८

१५. एवं कत्ता भोत्ता होज्झं अप्पा संगेहि कझेदि।
हिऽंति पारमपारं संसारं मोहसंघण्णो।

– वही, ६६

१६. सर्वविवतोत्तीर्णः यदा स चैतन्यमचलमाप्नोति।
भवति तदा कृतकृत्यः सम्यक् पुरुषार्थ सिद्धिमापन्नः।।

– आचार्य अमृतचन्द्रः **पुरुषार्थ सिद्धयुपाय**, ११

---

# श्री जिन वाणी

## समता

**समय समा चरे।**

– सूत्र कृताङ्ग २/२/३

(साधक को सदा समता का आचरण करना चाहिये।)

**वियाणिया अप्प नामप्प एण जो राग दोसेहि समो सयुज्जे।**

– दशवैकालिक ६/३/११

(जो साधु आत्मा को आत्मा से जानकर राग द्वेष के प्रसंगों में सम रहता है, वह पूज्य है।)

**इच्छा हु आगास समा अणंतिया।**

– उत्तराध्ययन ६/४८

(इच्छा आकाश के समान अनन्त है।)

**जस्से कुले समुप्पन, जेहि वास वसे नरे।**
**मपाह लुप्पए बाले, अन्ने अन्नेहि मुच्छिए।।** – सूत्रकृताङ्ग १/१४

(अज्ञानी मनुष्य जिस कुल में उत्पन्न होता है, अथवा जिनके साथ निवास करता है, उनमें ममत्व भाव रखता हुआ अपने से भिन्न वस्तुओं में मूर्छा भाव प्राप्त करके बहुत दुखित होता है।)

# जीव दया व्यवहार में

**– डॉ. शशि कान्त**

हमारे देश में जो विभिन्न धार्मिक परम्पराएं हैं उनमें वैदिक धर्म, वैष्णव धर्म, शैव धर्म, बौद्ध धर्म और जैन धर्म भारतीय संस्कृति के आधार–भूत धर्म हैं। जैन धर्म इस देश का एक प्राचीन और मौलिक धर्म है। इस परम्परा में धर्म का उपदेश देने वाले २४ तीर्थंकर माने गए हैं। भगवान महावीर इस परम्परा के अंतिम २४वें तीर्थंकर थे। उनका जन्म ईसा से ५९९ वर्ष पहले बिहार प्रदेश के वैशाली नगर में हुआ था। उनके द्वारा दिये गये उपदेश आज जो जैन धर्म प्रचलित है, उसका आधार हैं। उनका मूल उपदेश था कि हमें सब प्राणियों के प्रति करुणा का भाव रखना चाहिए, किसी को तकलीफ नहीं देनी चाहिए और किसी प्राणी की हत्या नहीं करनी चाहिए।

हम यहाँ पशु–पक्षियों के प्रति अपने व्यवहार की बात करेंगे। पशु–पक्षियों का हमारे लिए दो प्रकार से उपयोग है। एक उपयोग है कि पशु–पक्षी हमारा मनोरंजन क़रते हैं, दूसरा उपयोग है कि वे हमारे काम आते हैं अर्थात् जिनसे हमें कोई न कोई आर्थिक लाभ मिलता है। उनका हमारे लिए व्यावसायिक उपयोग है जैसे कि गाय, भैंस बकरी हमें दूध देती हैं, बैल हल जोतने के काम आता है, मुर्गी अंडा देती है, कुत्ता रखवाली करता है, गधा भी माल ढोता है। जो पशु–पक्षी हमें कोई आर्थिक लाभ पहुंचाते हैं, उनकी देखभाल हम अपने लिए उपयोग की दृष्टि से करते हैं। इसमें जीव–दया की भावना के साथ हमारा स्वार्थ भी जुड़ा हुआ है। यदि हम उन पशुओं को समय पर चारा–पानी नहीं देंगे, उनके आराम और स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखेंगे और उनके साथ निर्दयता का व्यवहार करेंगे तो उनकी उत्पादन क्षमता कम हो जाएगी और वे हमारे लिए आर्थिक रूप में लाभ के बजाए हानि करने वाले होंगे।

हमारा देश एक धर्म–प्राण और अहिंसा, दया एवं करुणा के आदर्शों को मानने वाला देश है। इसी को देखते हुए हमारे संविधान में ही दो धाराएं पशु–पक्षियों के प्रति दया–पूर्ण व्यवहार सुनिश्चित करने के लिए रखी गयी हैं। धारा ४८ में यह कहा गया है कि दुधारू और वाहक पशुओं की नस्लों में सुधार के लिए और उनका वध रोकने के लिए राज्य अर्थात् सरकार व्यवस्था करेगी, और धारा ५१ में यह मूल कर्तव्य निर्धारित किया गया है कि भारत के प्रत्येक नागरिक का यह मूल कर्तव्य होगा कि वह प्राकृतिक पर्यावरण की, जिसके अन्तर्गत वन्य

जीव हैं, रक्षा करे तथा प्राणी मात्र के प्रति दया भाव रखे। १६६० में ही 'पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण अधिनियम' हमारी संसद द्वारा बनाया गया था और सन् १६६६ में 'पर्यावरण संरक्षण अधिनियम' बनाया गया था। उसके बाद सन् १६७२ में वन्य जीवों की रक्षा के लिए भी एक अधिनियम बनाया गया। इन कानूनों के द्वारा हमारी सरकार जनता में जीव दया की भावना को पुष्ट करने के लिए अपना संकल्प प्रदर्शित करती है।

पशुओं के प्रति क्रूरता निवारण सोसाइटी एक गैर--सरकारी संस्था भी है जो जीव दया के प्रति जनता को जागरूक करती है। इसकी शाखाएं पूरे देश में हैं। एक पशु कल्याण परिषद भी है। विभिन्न समाजों द्वारा गोशालाएं और पिंजरापोल भी चलाए जाते हैं। ये सभी संस्थाएं इस बात पर बल देती हैं कि हमें पशु–पक्षियों के प्रति दया–पूर्ण व्यवहार करना चाहिए।

कुछ ऐसी परम्पराएं या प्रक्रियाएं भी प्रचलित हैं जो पशुओं के प्रति जीव दया के व्यावहारिक भाव को नष्ट करती हैं। इन प्रक्रियाओं के प्रति जनता में जागृति लाना–लोगों को उनमें निहित क्रूरता के प्रति शिक्षित और जागरूक करना आवश्यक है– जैसे कि पशुओं को वध शालाओं में वध करने से पहले चमड़ा नरम करने के लिए जीवित अवस्था में पीटना, हलाल के नाम पर पशु को तिल–तिल कर भीषण तकलीफ देते हुए उसका वध करना, बलि के नाम पर भाले की नोंक पर जीवित पशु को बींध कर मार डालना, पशुओं पर चमड़े के चाबुक का प्रहार करना जिससे कि उसे असहनीय पीड़ा होती है। सरकार ने भी इस प्रकार की क्रूरता को रोकने के लिए कई कदम उठाए हैं।

भारत सरकार के कल्याण मंत्रालय ने रेस में दौड़ने वाले घोड़ों पर चमड़े का चाबुक मारने पर रोक लगाई है। पशु–पक्षियों पर अनियंत्रित वैज्ञानिक प्रयोगों पर भी रोक लगायी गई है। केवल धार्मिक दृष्टि से ही नहीं वरन् मानवीय उपयोग और कानून की दृष्टि से भी हमें अपने दैनिक जीवन में पशु–पक्षियों के प्रति अपना व्यवहार एक जागरूक व कर्तव्यनिष्ठ नागरिक के रूप में संवेदनशील, करुणापरक और दयापूर्ण रखना चाहिए।

**– ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ**

———

# हमारी दुर्दशा और हीनता का कारण

**— श्री सुखमालचंद जैन**

**(शोधादर्श–४८ के पृष्ठ १८–२३ पर प्रकाशित अपने लेख में हम भारतवासियों की दुर्बलता एवं हीनता के कारणों का भाई जमनालाल जी (सारनाथ) ने एक विश्लेषण प्रस्तुत किया था। प्रस्तुत लेख में उसी विषय पर गंभीर चिन्तक वयोवृद्ध (६३ वर्षीय) भाई सुखमालचंद्र जी ने अपना चिन्तन प्रस्तुत किया है। उनका निष्कर्ष उचित ही है कि भूतकाल में हम भारतवासियों को जो विभिन्न विदेशी आक्रमणकारियों से पराजय का सामना करना पड़ा, उसका मुख्य कारण उनकी युद्ध कला में श्रेष्ठता तथा अत्यधिक निर्दयता व अनैतिकता का प्रयोग था न कि हमारी अहिंसावादी प्रवृत्ति। आखिर भरत–बाहुबलि के उस आदि युग में हुए युद्ध में भी भरत के द्वारा चक्र रत्न के अनैतिक प्रयोग से खिन्न होकर बाहुबलि ने जीती बाजी उन्हें लौटा कर दीक्षा ग्रहण की थी। — सम्पादक)**

अहिंसा की सरल परिभाषा केवल इतनी है कि 'हिंसा से विरति' यथाशक्ति यथासंभव।

'प्रमत्तयोगात् प्राणव्यपरोपणं हिंसा'। मनुष्य और पंचेन्द्रिय पशुओं में दस प्राण होते हैं। शेष पशुओं में और क्षुद्र जीवों में इन्द्रियों की संख्या के अनुसार कम होते हैं।

जीवन समाप्त कर देना ही हिंसा नहीं है, प्राणी के एक भी प्राण को क्षति भी पहुंचाना हिंसा है। और केवल स्वयं ही हिंसा में निमित्त होना हिंसा नहीं है। हिंसा की प्रेरणा कर दूसरों से कराना भी प्रेरक की भी हिंसा है। न स्वयं हिंसा की, न कराई, किन्तु किसी भी होती हुई हिंसा के प्रति समर्थन–अनुमोदन के भावों का उत्पन्न होना उस हिंसा में सम्मिलित होने के तुल्य शास्त्रकारों ने प्रतिपादन किया है।

पाप एक भावात्मक (ABSTRACT) शक्ति क्षीणक तत्व है जो अशुभ भावों के द्वारा होने वाली क्रियाओं से आता है और आत्मा की स्थिरता–निर्भयता–धैर्य गुणों को निर्बल कर देता है। पाप को लाने वाले अशुभ भाव हैं हिंसा, असत्य, स्तेय (चोरी), अब्रह्म (मैथुन), और परिग्रह।

पाप के विपरीत शुभ भावों से पुण्य की शक्ति आत्मा में स्थिरता–शान्ति, विवेक, निर्भयता, धैर्य आदि गुणों का बल बढ़ाती है। जीवन में सुख, आनन्द, विश्वास, प्रेम, प्रतिष्ठा आदि का अनुभव कराती है। शुभ भाव दया–त्याग–परोपग्रह–क्षमा– मार्दव–प्रेम–सरलता–निर्लोभत्व आदि की क्रियायें जीव–समाज के प्रति कराते हैं।

अहिंसा तत्व पर इस व्याख्या से अधिक चिन्तन का प्रयास करते समय प्रथम ही यह निश्चय करें कि क्या कभी भूतकाल में अहिंसा की देश में प्रतिष्ठा हो सकी है। जितनी अहिंसा की झलक गत–शताब्दी में पूज्य महात्मा गांधी जी दिखला सके उससे ही यह नाममात्र की स्वतंत्रता तो देश को प्राप्त हो गयी–अहिंसा का मूल्यांकन क्या इसी अलौकिक दृश्य से ही स्पष्ट नहीं हो गया है?

किन्तु स्वतंत्रता के साथ ही देश का विभाजन और अमानुषिक हिंसा, लगातार बढ़ती हुई अनैतिकता, भ्रष्टाचार (प्रत्येक आयाम में), चुनावों के समय घोर उपद्रव और चुने हुये सांसदों का अवर्णनीय उपद्रवपूर्ण व्यवहार–यह सब दुर्बलता और हीनता क्या अहिंसा के कक्ष में तलाश की जायगी?

यह सब देशवासियों का प्रमादयोग है (जबकि प्रस्तुत यह किया जाता है कि देश में कृष्ण भवगान् की गीता के स्थितप्रज्ञयोग और अनासक्ति–योग का उपदेश है)। प्रमादयोग तो हिंसादि पापशक्तियों का जनक है और उसके दर्शन तो आतंकवाद की शक्तियें इस पृथ्वी के सब देशों को प्रत्यक्ष कराते हुये भयभीत कर रही हैं। अब अहिंसा के प्राणीरक्षा के उपदेश की आड़ में हीनता के कारण को छिपने की गुंजाइश नहीं रही है।

गृहस्थ के लिये आरंभी हिंसा, व्यावसायिक हिंसा, विरोधी हिंसा को जीवन के लिये अनिवार्य जानकर केवल गृह त्यागी संतों के लिये ही विरोधी हिंसा से भी विरति का विधान किया गया है। क्योंकि संत किसी को विरोधी मानते ही नहीं हैं।

भूतकाल में भारतीय राजाओं की आक्रमणकारी मलेच्छखंड वासियों द्वारा पराजय युद्धकला में हीनता के कारण हुई। युद्ध में श्रेष्ठ पक्ष की जीत होती है–जो अधिक निर्दयता अनैतिकता और दृढ़ता से (इसे ही वीरता कहा जाता है युद्ध के आयाम में) प्रहार कर सके।

महाभारत का युद्ध भी तो यहां हुआ। रामायण का युद्ध भी हुआ। दोनों में अनैतिक प्रयोग द्वारा ही जीत हुई थी। देश में इतना हिंसा–भ्रष्टाचार का आचरण सदा से है कि अनेक ऋषि–मुनि–तीर्थंकरों का उपदेश भी जिसे टस–से–मस नहीं कर सका है। विदेशियों से हारने पर हार का कारण उस कल्याणकारी उपदेश को कहना, जिसके अनुसार परिवार में, समाज में, सांप्रदायिक संघर्ष में, देश में ही पड़ोसी–राज्यों से निरन्तर–संघर्ष में कोई भी फर्क नहीं पड़ा, कैसे उचित माना जा सकता है? यह तो केवल उस दिशा में मिथ्या दोषारोपण है जहाँ से कोई प्रतिवाद कभी नहीं आयेगा।

**– एफ–३ ग्रीन पार्क (मेन), नई दिल्ली**

१५ अप्रैल को महावीर जयंती के उपलक्ष्य में

# ज्ञातृपुत्र भगवान महावीर

– श्री सुरेन्द्र मुनि जी

तीर्थंकर महाप्रभु महावीर इस विराट् विश्व की एक ऐसी निर्धूम अक्षय अनंत ज्योति रहे जो आज भी प्रतिपल–प्रतिक्षण अक्षुण्ण रूप से प्रदीप्त है और अनंत अनागत काल में भी इसी रूप में प्रकाशमान रहेगी। समय की सघन परतें भी उस अलौकिक ज्योति को आंशिक रूप में भी धूमिल नहीं कर सकतीं। उस अखण्ड अलौकिक ज्योति से अतीतकाल में भी जनता जनार्दन लाभान्वित हुई थी और अभी भी हो रही है तथा भविष्य में भी उससे ज्योतिर्मान होती रहेगी। उस ज्योति का अक्षरशः वर्णन करना मेरी मति और शक्ति से सर्वथा परे है तथापि उस विषय में अपनी लेखनी को गतिशील कर रहा हूँ !

भगवान महावीर बहुआयामी विराट व्यक्तित्व के प्राणवान महिमामंडित महा पुरूष थे। उनके जीवन के विविध पहलु वस्तुतः वर्णनातीत हैं। उनका अध्यात्म–साधना की सौरभ से सुरभित जीवन सचमुच में मनोरम उपवन रहा। जो भी उनके चरणों में पहुँचा उसका जीवन भी महक उठा और वह उनके प्रतिबोध से अन्तर्जगत का प्रशस्त यात्री बन गया। सुबह का भूला व्यक्ति शाम को अपने घर में अर्थात् आत्मगृह में पहुँच गया। उदाहरण के रूप में हम मेघकुमार के जीवन का स्मरण कर सकते हैं।

सर्प जैसा उपद्रवकारी जीव भी प्रभु महावीर का संक्षिप्त उद्बोधन पाकर अपनी क्रूरता की तिलांजलि दे देता है, अपने चण्ड रूप को छोड़कर क्षमा धर्म को अंगीकृत कर लेता है। जिससे वह जनता द्वारा पूजित होता है इतना ही नहीं परिणाम स्वरूप वह सर्प अपने आगामी भव में देव बन जाता है।

अर्जुनमाली जैसा हत्यारा जो एक लोहे के रूप में था वह भी प्रेरणास्पद पारस का संस्पर्श पाकर स्वर्ण के रूप में परिणत हो जाता है और उसके जीवन का हर कोण वैडूर्य–रत्न की भांति जगमगा उठता है।

इन्द्रभूति गौतम जो ब्राह्मण परम्परा का सक्षम व्यक्तित्व था और अपने युग के कर्मकाण्डी ब्राह्मण के रूप में विश्रुत रहा था वह भी प्रभु महावीर के समवसरण में छात्र समुदाय के साथ पहुंचता है और प्रभु महावीर के आभामण्डल को निहारकर विस्मय –विमुग्ध हो उठता है। वह प्रभु महावीर से शास्त्रार्थ कर उन्हें पराजित करने की प्रबल भावना से पहुँचा था, किन्तु प्रभु ने इन्द्रभूति गौतम को सन्निकट आता देखकर इतना ही कहा– "हे इन्द्रभूति गौतम ! तुम्हारे मन में आत्मा

के विषय में संदेह है।" इन्द्रभूति गौतम ने ज्यों ही यह सुना उन्हें अपार आश्चर्य हुआ कि कुण्डलपुर के राजकुमार वर्धमान महावीर अनंत ज्ञानी हैं और वह प्रभु महावीर का सर्वात्मना समर्पित शिष्य बन गया।

भगवान महवीर की कल्याणी–वाणी जन–जन के मन को जागृति का अमर संदेश देती है। उनकी दिव्य वाणी में अहिंसा, अपरिग्रह और अनेकान्त यह अकारत्रयी अभिगुंजित हुई थी जिससे जन चेतना भी परिझकृंत हो उठी। मैं विनम्र भाषा में निवेदन करना चाहता हूँ कि अहिंसा की गंगा, अपरिग्रह की यमुना और अनेकान्त की सरस्वती का जिस व्यक्ति के जीबन में संगम हुआ है उसका जीवन वस्तुतः प्रयागतीर्थ के रूप में बन गया।

अहिंसा आचार प्रधान भी है और विचार प्रधान भी हैं। अहिंसा न केवल विचार तक ही सीमित है अपितु वह आचरणीय भी है। जब वह जीवन में आचारात्मक रूप में साकार होती है तब धर्म के रूप में दृष्टिगत होती है। इसी दृष्टि से अहिंसा परम धर्म है, उत्कृष्ट मंगल है, धर्म रूपी सुरम्य प्रसाद की आधार शिला है, अध्यात्मसाधना का महाप्राण है, मन का माधुर्य हैं तथा जीवन का सौन्दर्य हैं। अपरिग्रह का अभिप्राय यह है कि जो भी वस्तुएं हैं उन पर मूर्छाभाव न रखा जाए। जब वस्तु पर आसक्ति हो जाती है तब वह परिग्रह है। अपरिग्रह का सिद्धान्त भी सुख–शान्ति और जीवन–विकास के लिये वरदान स्वरूप है। परिग्रह यदि महारोग है तो अपरिग्रह उसकी अमोघ औषधि है।

ज्योतिर्मय तीर्थंकर महावीर का तृतीय सिद्धान्त अनेकान्तवाद है। यह एक ऐसा सिद्धान्त है जो वैचारिक विभिन्नता में समन्वय की प्रकाश किरणें विकीर्ण करता है। मतभेद को दूर करता है जिससे मनभेद की स्थिति उत्पन्न नहीं होती। अनेकान्त का अतीव संक्षिप्त तात्पर्य इतना सा है कि किसी भी वस्तु के विषय में अपेक्षा से चिन्तन करना, विविध दृष्टियों से विचार करना जिससे हमारी विचारधारा कदाग्रह और दुराग्रह के प्रगाढ़ जाल से विमुक्त हो जाती है और हमारा विचार सत्य, तथ्य एवं समन्वय के धरातल पर प्रतिष्ठित हो जाता है।

सारपूर्ण भाषा में इतना सा और भी निवेदन करना चाहता हूँ कि ज्योतिर्मय महाप्रभु महावीर का व्यक्तित्व एवं कृतित्व अगाध अपार महासागर से भी गहन गंभीर है एवं असीम अनंत गगन से भी विराट् है, व्यापक है।

– आचार्य देवेन्द्र मुनि जी के प्रशिष्य एवं
उप प्रवर्तक डॉ. राजेन्द्र मुनि जी के शिष्य
द्वारा– श्री राकेश जैन (पप्पी)
साड़ी म्युजियम, कला बाजार
जालन्धर– १४४००१ (पंजाब)

# महावीर भगवान हैं

त्याग तप ज्ञान मूर्ति, साधक सुजान सन्त,
आप वर्धमान महावीर भगवान हैं।
वीतराग सानुराग, कल्मष–कृपाण ढाल,
सत्य चित्त आनन्द भवाब्धि जलयान हैं।।
दिव्यता की मंजु रसखान, सूर्य से प्रचण्ड,
'त्रिशला–कुमार' जग–जीवन के प्राण हैं।
कामधेनु, कल्प–वृक्ष, गंग नीर से पुनीत,
आप योगियों में हिमवान से महान हैं।।

आपने दिखाया सत्य शान्ति का पुनीत पंथ,
हिंसा भोगवृत्ति को अधर्म बतलाया है।
'जियो और जीने दो' की भावना जगायी चारु,
मुक्ति परमार्थ का परम पद पाया है।।
घोर अंधकार में भी चलते सदैव रहे,
ज्ञान–रवि पाके हृद–कंज मुसकाया है।
बीत गये युग 'परमानँद' घटी न कीर्ति,
कल्प–वृक्ष के समान आपकी ये छाया है।।

**– डॉ. परमानन्द जड़िया**
'जड़िया निवास'
५१, खत्री टोला, मशकगंज,
लखनऊ – २२६०१८

# बधाई गीत

— विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्रसागर प्रचंडिया

मिलकर बहुत बधाये गाए।

राजघराने मुदित बड़े हैं,
अगवानी में सभी खड़े हैं,
शुभागमन की बाट जोहते, सबने 'मंगल–पाठ' सुनाए।
मिलकर बहुत बधाये गाए।।१।।

अवनी औ अम्बर हरखाये,
तभी सुखद संवाद सुनाये,
महावीर ने जन्म ले लिया, अग–जग में प्रमोद बगराए।
मिलकर बहुत बधाये गाए।।२।।

रतनन की बरखा बरसी है
तन–मन से धरती हरखी है,
मिटे सकल संताप सभी के, संयम के संस्कार सुहाए।
मिलकर बहुत बधाये गाए।।३।।

प्रभु को पाकर सुखी हो गए,
सब के सारे दुक्ख खो गए,
वैर–विरोध भुलाकर पानी, एक घाट पीने को आए।
मिलकर बहुत बधाए गाए।।४।।

व्यसन–वासना सारी छूटीं,
कुटिल कर्म–श्रृंखला टूटीं,
'स्वयं जिओ जीने दो सबको', सन्मति के संदेश सुनाए
मिलकर बहुत बधाए गाए।।५।।

— मंगल कलश

३६४, सर्वोदय नगर,
आगरा रोड, अलीगढ़–२०२००१

# अर्जुन माली (नाटिका)

## (गतांक से आगे)

— श्रीमती सुधा जिन्दल

## पांचवा दृश्य

**स्थान**— बाजार

(हाट में चारों ओर से आवाज आ रही है। कोई चना, कोई सब्जी, कोई कुछ, कोई कुछ बेच रहा है। गाना गाते हुए चने वाले का प्रवेश)

**गाना**

खालो, खालो चना मोरे भैया, कि लइया चुरमुर बोले।।

मेरा चना चुरमुरेदार, खालो चना मेरे सरकार।।

ऐसा चना मिले ना यार। काली मिर्च मसालेदार।।

जो भी चना हमारा खाये। बल से बलशाली हो जाये।।

दुश्मन देख उसे घबड़ाय। सबके छक्के देय छुड़ाय।।

बीर बांका बहादुर लड़ैया, कि लइया चुरमुर बोले।।

(लोग चना ले लेकर खा रहे हैं और साथ में घूम रहे हैं। तभी दूर से आवाज आती है।) "भागो, भागो। अर्जुनमाली अपना मुगदर उठाये हाट की ओर बढ़ा चला आ रहा है। भागो, भागो नहीं तो जिस को पा जायेगा उसकी हत्या कर देगा।"

(मंच पर भगदड़ मच जाती है। लोग गिरते—पड़ते भागते हैं। इतने में अर्जुनमाली मंच के मध्य में आकर बोलता है।)

**अर्जुन**— "हाँ, हाँ मैं आ गया हूँ। क्यों डरते हो मुझसे? क्यों बन्द कर लिये अपने—अपने दरवाजे? थू ! तुम लोग नपुंसक हो। शक्तिहीन हो।....कोई मुझे भोजन तक नहीं देता। क्यों?........इसलिए राजगृही के निवासियों अब मैं तुम्हारे लहू और मांस से अपनी भूख और प्यास बुझाऊँगा।"

**स्त्री**— "तुम राक्षस हो गये हो अर्जुन माली।"

**अर्जुन**— "हाँ, हाँ मैं राक्षस हो गया हूँ। मैं तुम सब लोगों को खा जाऊँगा। तुम्हारा लहू पी जाऊँगा।...यह वह नगर है जिसे मैं और मेरी प्रियतमा बन्धुमती

दोनों मिलकर सजाया करते थे। अब उसी नगर को वीरान कर देने की सौगंध ली है मैंने। यह है मेरा सौ फलों वाला मुगदर इसी से मैं तुम सबको बन्धुमती के पास भेजूँगा।"

**स्त्री–** "तुमने मेरे पति की हत्या कर दी। बच्चे को भी नहीं छोड़ा। अब और किस–किस के प्राण लोगे, अर्जुनमाली?"

**अर्जुन–** (हांफते हुए) "हाँ, हाँ मैं तुमको भी मार डालूँगा। खोल दो इन किवाड़ों को। इस नगरी में मैं अब कोई फूल नहीं खिलने दूँगा।"

**स्त्री–** "लेकिन क्यों?"

**अर्जुन–** "क्या मेरे दुःख से बड़ा किसी का दुःख है? बोलो...बोलो..बोलते क्यों नहीं? क्या बिगाड़ा था बन्धुमती ने तुम्हारा? क्या बिगाड़ा था मैंने तुम्हारा? क्यों उजाड़ दी तुमने मेरी फलती–फूलती जीवन वाटिका?" (रोता है।)

**स्त्री–** "इसके लिए हम सब बहुत दुखी हैं। हम तुम्हारे दुख में साझीदार हैं, अर्जुनमाली।"

**अर्जुन–** "नहीं, तुम सब मेरे शत्रु हो। तुम डरपोक हो। नपुंसक हो। कायर हो। मेरा घर वीरान होता रहा और तुम देखते रहे। आज तक मेरी बन्धुमती को उठाकर ले जाने वालों का कोई पता नहीं लगा सका। उन दुष्ट अपराधियों का आज तक राज्यकर्मचारी और गुप्तचर पता तक नहीं लगा सके। ऐसे राजा और उसके रक्षकों को चुल्लूभर पानी में डूब मरना चाहिए।...थू है ! अब मैं इस नगर में किसी को सुहागिन नहीं बनने दूँगा। मैं अर्जुनमाली तुम सबका सुख चैन समाप्त कर दूँगा।" (हँसता है।) "हाँ, हाँ, हाँ सब डरते हैं मुझसे। मेरे आते ही सब दुम दबाकर अपने–अपने घरों में चूड़ी पहनकर छुप जाते हैं। इस राजा श्रेणिक की राजगृही में सब नपुंसक हैं। (पुकार कर) राजा श्रेणिक, अब कभी तुम्हारी नगरी में बन्धुमती नहीं आयेगी। मैं जिन हाथों से उसके सुन्दर–सुन्दर बालों को सहलाया करता था, जिन बाहों में भरकर उसे प्रेम किया करता था उन्हीं हाथों पर उसका मृत शरीर गंगा पार से उठाकर लाया था। कितना बेसुध थी वह। कोई भी उसकी सहायता नहीं कर सका था। कितना दर्दनाक रहा होगा वह दृश्य जब वह दुष्टों के चंगुल में तड़प–तपड़ कर मुझे पुकार रही होगी।...क्या तुम्हें मेरी पुकार सुनाई नहीं देती। क्या तुम्हें मेरा दुख दिखाई नहीं देता।" (बेहोश होकर गिर पड़ता है।)

## छठा दृश्य

स्थल– बाजार जहाँ अर्जुनमाली पिछली रात बेहोश हुआ था।

समय– प्रातःकाल करीब ६ बजे।

पात्र– अर्जुनमाली व महावीर स्वामी के शिष्य सुदर्शन।

(बाजार प्रातः भ्रमण के लिये आते समय सुदर्शन की दृष्टि बेसुध पड़े अर्जुनमाली पर पड़ती है और वह सोचने लगते हैं 'पौ फट गयी, चिड़िया चहचहाने लगी और यह व्यक्ति ऐसे सड़क पर अब तक नींद में पड़ा सो ही रहा है। देखता हूँ यह इस तरह धूल धूसरित क्यों पड़ा हुआ है?' (पास जाकर) 'ओह.. चिथड़े वस्त्र, बड़े–बड़े नाखून, बिखरे बाल, पैरों पर जमा खून, वीभत्स चेहरा, हाथों में पकड़ा यह मुगदर.. (विस्मय से) "कौन है यह?' 'क्या इसका इस संसार में कोई नहीं?'––– (अर्जुन को जगाने की नीयत से) "कौन हो तुम? उठो भाई, सवेरा हो गया है। नई सुबह के दर्शन करो, प्रभु का नाम लो।" (अर्जुन माली इन शब्दों के सुनते ही आँख खोल लेता है और आँखें मलते हुए सुदर्शन को देखता है और गदा लेकर जल्दी से खड़ा हो जाता है।)

**अर्जुन–** "कौन हो तुम?.. क्या तुम्हें मुझसे डर नहीं लगता ?...मैं राक्षस हूँ, मैं सबका माँस खाता हूँ, लहू पीता हूँ...मैं तुम्हें भी खा जाऊँगा" (शेर जैसा गुर्राना)।

(चारों ओर से भय के स्वर उभरते हैं।)

**प्रथम व्यक्ति–** "आप दूर रहिए, गुरुवर। यह आपकी हत्या कर देगा। वह प्रतिदिन ६ पुरुष और एक स्त्री की हत्या करता है।"

**अर्जुन–** "सुना तुमने, मैं हत्यारा हूँ। मैं प्रतिदिन ६ पुरुष और एक स्त्री की हत्या करके उनका लहू पीता हूँ।"

**स्त्री–** "इसने मेरे पति की हत्या कर मुझे विधवा बना दिया है।"

**अर्जुन–** "हा, हा, हा, हा विधवा हो गई, विधवा हो गई। कितना अच्छा होता कि इस राजगृही की सभी स्त्रियां विधवा हो जायें।"

**तीसरा–** 'अर्जुनमाली निर्दयी है, इसने मेरे पिता को भी मार डाला है।"

**चौथा–** "मेरे निरपराध बच्चों को इसने सदा के लिए सुला दिया है।"

**अर्जुन–** "हाँ, हाँ मैंने सबको मारा है और मैं सबको मारूँगा जब तक मेरे शरीर में प्राण रहेंगे तब तक मैं अपनी बन्धुमती का प्रतिशोध यहाँ के नगरवासियों से लेता रहूँगा। किसी को जीवित नहीं छोड़ूँगा।"

**सुदर्शन**– "ओह, तुम तो बहुत दुखी प्रतीत होते हो। क्या बात है? मुझे बताओ अपना दुःख, संभवतः मैं तुम्हारी वेदना कम करने में कुछ सहायता कर सकूँ।"

**अर्जुन**– "नहीं, मेरे दुःख को अब कोई कम नहीं कर सकता। मेरी प्रियतमा अब कभी वापस नहीं आ सकती। मैंने स्वयं अपने हाथों से अपनी प्रियतमा बन्धुमती की चिता को अग्नि दी है। अब तो उसकी लाश मिट्टी में मिल गयी होगी। अब वह कभी लौटकर नहीं आ सकती। मैं बिल्कुल अकेला हूँ, बिल्कुल अकेला।...मेरा इस संसार में कोई नहीं है।...ना तो मुझे कोई भोजन देता है और ना ही मेरे निकट कोई आता है।.......(उग्र स्वर में) मैं इन सबसे प्रतिशोध लूँगा। इस सुन्दर राजगृही नगरी को नष्ट कर दूँगा।"

**सुदर्शन**– "स्वयं को शांत रखो अर्जुनमाली।...लो मेरे पास कुछ फल हैं, इन्हें खा लो। सम्भवतः तुम बहुत भूखे हो।"

(अर्जुनमाली फलों को देखकर अपनी जबान से होठ चाटने लगता है और सुदर्शन के हाथों से झपटकर फल छीन लेता है और जल्दी–जल्दी खाने लगता है। फल खाने के बाद उसकी भूख मिटती है तो वह शान्त होता है।) सुदर्शन– "आओ मेरे पास थोड़ा शान्त होकर बैठो अर्जुनमाली। मुझसे अपना हृदय खोलो। विश्वास करो मैं तुम्हारा शत्रु नहीं, मित्र हूँ। मैं तुम जो चाहोगे वही करूँगा।"

**अर्जुन**– (कुछ देर तक एकटक सुदर्शन को देखता रहता है। फिर कहता है) "मुझे भी लगता है कि तुम मेरे शत्रु नहीं, मित्र हो सकते हो। आपको देखकर मेरा मन कहता है कि मैं अपना दुख आपसे कह सकता हूँ।" (फिर अपलक देखता रहता है और अचानक फूटफूटकर रोने लगता है) "मैं अनाथ हूँ प्रभुवर! मुझे शरण दीजिए, प्रभु। मुझे शरण दीजिए।"

**सुदर्शन**– (अर्जुनमाली को कंधे पकड़कर ऊपर उठाते हुए) "जीव तो सर्वथा अनाथ होता है, मित्र। दुख में कोई भी उसका शरणभूत नहीं होता। सुख में परिवार, कुटुम्बीजन, मित्र आदि सभी साथी होते हैं, किन्तु दुःख में प्रायः सभी किनारा कर लेते हैं और जीव को अकेले ही दुःख भोगना पड़ता है।" (अर्जुनमाली के सिर पर सुदर्शन हाथ फेरते हैं।)

**अर्जुन**– "मैं आज आपको विक्षिप्त सा दिखाई पड़ रहा हूँ। मैं.. मैं ऐसा नहीं था। मेरा भी घर था.....हम दोनों पुण्यारण्य में जाकर नित्य प्रति तरह–तरह के पुष्प एकत्रित करके उन्हें बेचकर अपना पालन पोषण किया करते थे, इस यक्ष मंदिर को सजाया करते थे।".....

"उस दिन पिछले मदनोत्सव के दिन कितना खुश था मैं। मेरी प्रियतमा बन्धुमती ने फूलों से कितना मनमोहक सिंगार किया था, कितनी सुन्दर लग रही थी वो कि अचानक दो हत्यारे आये और मेरी बन्धुमती को उठाकर ले जाने लगे, मेरे हाथ–पैर रस्सी से बांध दिये। मैं यह समझ भी न पाया कि वे लोग ऐसा क्यों कर रहे हैं। मैं चिल्लाता रहा, चीखता रहा, किन्तु किसी ने मेरी न सुनी। मेरी फलती–फूलती बगिया को दुष्टों ने वीरान कर दिया, प्रभु वीरान कर दिया।" (रोने लगता है।) "मैं यह सब अपनी आंखों के सामने होता देखता रहा और असहाय की तरह निःस्तब्ध सा कुछ भी न कर सका। मैं इन हाथों से उसकी रक्षा भी न कर सका। उसने मछली की तरह तड़प–तड़प कर जान दी होगी।" (कुछ देर तक मौन रहकर) "प्रभुवर अब आप ही बताइये मेरे साथ ऐसा क्यों हुआ? क्या इसमें मेरा कोई दोष था? बोलिये गुरुदेव, आप तो महात्मा हैं। आप तो त्रिकालदर्शी हैं, बोलिए।" (सुदर्शन को पकड़ कर झकझोरता है और रोते–रोते उनके चरणों पर निढाल सा गिर पड़ता है।)

**सुदर्शन–** (उसे फिर उठाते हुए) "धैर्य धरो मित्र, धैर्य धरो। इस अप्रत्याशित दुःख को न सहन कर पाने के कारण ही तुम्हारी मानसिक दशा विक्षिप्त सी हो गई है। अपने ऊपर संयम रखो।...तुमने इसी आवेश में आकर राजगृही के निवासियों की हत्या करनी शुरु कर दी है.. क्या यह उचित है, अर्जुनमाली?"

**अर्जुन–** (पुनः उग्र स्वरों में) "मैं इन सबसे बदला लूँगा। मैं इन्हें, अपने इस मुगदर से सबको मार डालूँगा। प्रतिकार, प्रतिशोध, बस, यही है मेरे जीवन का उद्देश्य। मेरा हृदय प्रतिशोध की अग्नि से जल रहा है। जब तक मैं इनके सुख चैन को समूल नष्ट नहीं कर दूँगा, मुझे चैन नहीं आयेगा।" (अपना मुगदर घुमाता है)

**सुदर्शन–** "क्या इन सबकी हत्या से तुम बन्धुमती को वापस ले आओगे?"

**अर्जुन–** "नहीं। ऐसा तो नहीं हो सकता, किन्तु".....

**सुदर्शन–** (बात काटते हुए) "थोड़ा सोचकर बताओ...क्या इनमें से किसी ने तुम्हारे साथ दुर्व्यवहार किया है? क्या इन लोगों ने तुम्हारी बन्धुमती का हरण किया है? क्या इन लोगों ने उसकी हत्या की है? अगर नहीं, तो फिर क्यों इनकी हत्या करते हो? इस हिंसा से तुम्हें क्या मिलेगा? कुछ भी तो नहीं पाओगे। अर्जुन, मेरे गुरु महावीर कहते हैं कि हिंसा ही हिंसा को बढ़ाती है। अहिंसा का मार्ग अपनाकर ही सुख, समृद्धि, शांति, प्रेम, मैत्री की कल्पना की जा सकती है।"

**अर्जुन–** "किन्तु मैं ऐसा क्यों बन गया प्रभु? मेरा क्या अपराध था गुरुदेव?"

**सुदर्शन–** "ना ही तुम्हारा कोई अपराध था और ना ही इन निरपराध राजगृही के निवासियों का। यह अधर्मी, अनाचारी, हत्यारों का अपराध है। फिर तुम क्यों अधर्म के मार्ग पर चलकर अधर्मी और अनाचारी कहलाना चाहते हो?"

**अर्जुन–** "तो फिर आप ही बताइये महात्मन् मैं क्या करूँ?"

**सुदर्शन–** "अच्छा एक बात बताओ अर्जुन। क्या इस प्रकार हत्यायें करने से तुम्हें शान्ति प्राप्त हो रही है?" (अर्जुन कोई जवाब नहीं देता) "तुम किसी और का नहीं मात्र अपना ही अहित कर रहे हो। प्रतिकार और प्रतिशोध का कोई अंत नहीं होता। यह तो मात्र शत्रुता की शनैः शनैः वृद्धि करने वाला ही है। अर्जुन यदि सुख और शांति चाहते हो तो इसे छोड़ना ही पड़ेगा। मैं देख रहा हूँ कि तुम कितने व्याकुल और अशांत हो। हमारे गुरु भगवान महावीर का उपदेश है 'क्षमा करो', 'खम्मामि सव्व जीवाणि, सव्वे जीवा खमन्तु मे।' परस्पर एक दूसरे के लिए मित्रता का भाव रखो।"

**अर्जुन–** "क्या प्रतिशोध को क्षमा में बदला जा सकता है, प्रभु? जहाँ तक मैं समझता हूँ बहुत असंभव सा लगता है।"

**सुदर्शन–** "नहीं अर्जुन। मन में क्षमा कर देने का भाव आ जाने पर और उसका नित्य स्मरण और अभ्यास करने से यह संभव है। भगवान महावीर कहते हैं 'लाभ–हानि, सुख–दुख, जीवन–मृत्यु, निन्दा–प्रशंसा, मान–अपमान सभी में समता का भाव रखो। न तो सुख में अति प्रसन्न हो और न ही दुख में अपना धैर्य छोड़ो।' अर्जुन, आज जो हम भोग रहे हैं वह सब हमारे पूर्व में किये गये कर्मों का परिणाम है, यह सोचकर मन में संतोष धारण करो। यह बात हमेशा याद रखो कि मनुष्य को अच्छी क्रियाओं में ही अपना चित्त लगाना चाहिए।"

**अर्जुन–** "ये अच्छी क्रियाओं का क्या अभिप्राय है?"

**सुदर्शन–** "भगवान महावीर कहते हैं 'अच्छी क्रिया अच्छा फल लाती है और बुरी क्रिया बुरा।' तभी तो मैं तुमसे कहता हूँ मित्र कि इस अधर्म और हिंसा की राह को छोड़कर स्वयं को अच्छे कार्यों में लगाकर अच्छा बनने का प्रयत्न करो।"

**अर्जुन–** "मैं तो पापी हूँ। लोग मुझे राक्षस कहते हैं। मुझसे घृणा करते हैं। फिर मैं अच्छा व्यक्ति कैसे बन सकता हूँ?"

**सुदर्शन–** "बन सकते हो। तुमने महर्षि वाल्मीकि की कथा तो सुनी होगी। वह पहले लुटेरे थे, किन्तु बाद में अच्छे कर्मों से ही वह महर्षि हो गये। इसी प्रकार

जब यह राह छोड़कर तुम पुनः अच्छे कार्य में प्रवृत हो जाओगे तो लोग धीरे–धीरे तुम्हारे पास आयेंगे, वे तुम्हें भोजन भी देंगे। तुम्हारे पास भी आयेंगे, तुम्हारे साथ मनुष्यों जैसा सहयोग करेंगे। वे तुम्हें राक्षस कहना छोड़ देंगे।"

**अर्जुन–** "मैं थक गया हूँ, गुरुदेव। निरन्तर हत्या के लिए अपना शिकार ढूँढ़ते–ढूँढ़ते मेरे शरीर में खून की बू आने लगी है।.....अब तो मुझे अपने आपसे भी घृणा हो गई है। मैं अब जीना नहीं चाहता।...'मेरा जीवन निष्प्रयोजन और निरर्थक है। इसलिए इस निरुद्देश्य जीवन को जीने से क्या लाभ? अब मैं इस सैकड़ों हत्या करने वाले मुगदर से अपनी जीवन लीला समाप्त कर दूँगा। मैं अपनी ही हत्या कर दूँगा।"

(मुगदर उठाकर अपने सिर पर मारना चाहता है कि सुदर्शन उसका मुगदर पकड़ लेते हैं।)

**सुदर्शन–** "यह क्या, अर्जुनमाली? यह तो कायरता है। नपुंसकता है। तुम्हारा जीवन उद्देश्यपूर्ण है, अर्जुन। यदि तूम स्वयं अपनी आत्मा को अपने उत्थान में लगा दो तो तुम्हारा कल्याण हो सकता है। यही तो जीवन का सच्चा मार्ग है जिसे तुमने अभी तक भुला रखा है।"

**अर्जुन–** "नहीं। गुरुदेव आप साधु पुरुष हैं, महात्मा हैं। आपके लिए यह संभव है, किन्तु मुझ जैसे हत्यारे के लिए नहीं।"

**सुदर्शन–** "यह तेरा भ्रम है अर्जुन। मुझमें और तुममें एक सी ही आत्मा का निवास है। उसमें किंचित् मात्र भी अंतर नहीं है। यदि कोई कमी है तो वह मार्ग चुनने की। तुम्हारी और हमारी आत्मा में अच्छे और बुरे कार्य करने की एक समान क्षमता है। सिर्फ आवश्यकता है शुभ आचरण द्वारा उसके विकसित करने की। आत्मा के पूर्ण प्रकार को जो भी उजागर कर लेता है, जो अपने दर्पण से जमी धूल साफ कर देता है वह ही महान आत्मा बन जाता है। भगवान महावीर का कथन है कि हर किसी के पास परमात्मा बनने की पूर्ण शक्ति है।"

**अर्जुन–** "गुरुदेव। क्या आप मुझे अपने गुरु भगवान महावीर के दर्शन करा सकते हैं?"

**सुदर्शन–** "हाँ, हाँ, क्यों नहीं? राजगृही के विपुलाचल पर्वत से ही उनकी वाणी को प्रसार मिला है। आज सभी भक्तजन, राजा–रंक, स्त्री–पुरुष, पशु–पक्षी सभी उनकी अमृतवाणी का रसास्वादन कर रहे हैं।"

**अर्जुन–** 'क्या वह मुझे अपना शिष्य बनाना स्वीकार करेंगे?"

**सुदर्शन–** "हाँ, हाँ अर्जुनमाली। उनके लिए जाति व वर्ग में कोई भेद नहीं है। सभी जाति व धर्म के मनुष्य उनसे मिलकर शिष्यत्व ग्रहण कर रहे हैं। उनके लिए सभी धर्म और जातियाँ समान हैं।"

(अर्जुन की आंखों से अश्रुधारा बहने लगती है और वह सुदर्शन के चरणों में गिर पड़ता है।)

**सुदर्शन–** "उठो! अर्जुनमाली, उठो! पश्चाताप की अश्रुधारा ने तुम्हारा हृदय अब शरतऋतु के आकाश के समान स्वच्छ और निर्मल कर दिया है। अब पल भर भी अपना समय मत खोओ। 'समयं मा पमायग्रे।' तुम्हें बहुत कुछ करना है।" (उसी समय सभी दूर खड़े लोग आ जाते हैं और भगवान महावीर की जय जयकार करते हुए चले जाते हैं। कुछ लोग आगे और कुछ लोग पीछे हैं। बीच में सुदर्शन और अर्जुनमाली चल रहे हैं।)

— अजिताश्रम, गणेशगंज,
लखनऊ – २२६०१८

---

# श्री वीर वर्धमान स्तवन

जिनेशे विश्वनाथाय ह्यनन्तगुणसिन्धवे।
धर्मचक्रभृते मूर्ध्ना श्रीवीरस्वामिने नमः।।
यस्यावतारतः पूर्व पित्रोः सौधे धनाधिपः।
मासान् षण्णवसंपूर्णांश्चक्रे रत्नादिवर्षणम्।।
यद्रूपातिशयं वीक्ष्य मेरौ जन्म महोत्सवे।
तृप्तिमप्राप्य शक्रोऽभूत्सहस्राक्षः सविस्मयः।।
वर्धमानश्रियां वर्धमानकीर्त्या जगत्त्रये।
वर्धमानेन यो वर्धमानं नामाप वासवैः।।
यो बाल्येऽपि जगत्सारां श्रियं जीर्णतृणादिवत्।
त्यक्तवा हत्वाक्षकामारींस्तपसेऽयात्तपोवनम्।।
येन प्रकाशितो धर्मः स्वर्मुक्तिश्रीसुखप्रदः।
द्विधा प्रवर्ततेऽद्यापि स्थास्यत्यग्रेयुगावधौ।।
इत्याद्यन्तातिगैर्विश्वैर्गुणैश्चातिशयैः परैः।
संपूर्णो यो मुदा स्तौमि तं वीरं तद्गुणाप्तये।।

— भ. सकलकीर्ति विरचित
श्री वीरवर्धमानचरितम्

---

# अमृत पेय – चाय

**– साहू शैलेन्द्र कुमार जैन**

एक भ्रांति है कि चाय नशा करती है, बुरी चीज है। मेरा मानना है यह अमृत पेय है। चीन में सामूहिक रूप में चाय पीने का रिवाज है। बड़े सम्मान से चाय के लिये बैठते हैं, झुककर वंदना करते हैं और फिर चाय पीते हैं प्यालों में, बिना हेंडिल के प्यालों में। कमरे के बाहर जूते उतारकर कमरे में भीतर आते हैं उतने सम्मान से कि पूजाघर में साधना के लिए प्रवेश कर रहे हैं।

चाय केवल चाय की पत्ती से ही नहीं बनती है।

१. पानी उबालकर चूल्हा जलाकर फिर उसमें पत्ती डालें और ढक दें। कुछ देर बाद छानकर पीयें। न चीनी, न दूध। इसे ब्लैक टी कहते हैं। कोलोस्ट्रोल कम करती है और सुस्ती दूर करती है। ब्लैक टी में मीठे के लिये शहद डाल सकते हैं, नीबू निचोड़ सकते हैं। फल की घर की बनी जैली डाल सकते हैं, संतरे का रस मिला सकते हैं। गुलाब के शरबत की एक छोटी चम्मच डाल सकते हैं– घर के बने की। बाजार के शरबत जैली सिंथेटिक होते हैं जायका बिगड़ सकता है।

२. आजकल जो दाने दार चाय आती है वह तो कूड़ेकरकट से बनती है और उसे रंग स्वाद ऊपर से दिया जाता है। पत्ती चाय–लीफ चाय प्रयोग करें। चाय का रंग गोल्डन होता है।

३. पहाड़ी इलाकों में स्थानीय पैदा होने वाली हरी चाय प्रयोग में लेते हैं। मामूली रंग छोड़ती है पानी में और इसे उबालकर चाय बनाते हैं। यह चाय बिना दूध, चीनी की पियें। जरा सा नमक और खाने का सोडा मिलाकर पियें। नजला, जुकाम, हरारत, थकान सब में रामबाण है। स्वाद के लिए अलग से तरीका है। इसमें उबलते में छोटी इलायची साबुत डालें। एक टुकड़ा दालचीनी डालें। खूब उबलाके प्याले में छान लें। दो तीन पत्ती केसर डालें। मीठे के लिए मिश्री डालें। जाड़ों में शरीर को गर्म रखती है। दमावालों को लाभदायक।

इसमें यदि दूध मिलाना चाहें तो बादाम ऊपर के मोटे छिलके सहित पानी में भिगोये रखें। जब जरूरत हो, एक प्याली के लिए एक बादाम छीलकर खरल में घोटकर चाय में मिलायें। लो बी.पी. में लाभकारी।

४. चाय की पत्ती से हटकर भी चाय बनती है। गुलबनफशा पानी में खूब उबालकर मीठे के लिए बताशे डालकर चार–छः दाने काली मिर्च पीसकर डालकर

उबालें। पीयें जाड़ों में गर्मी में। शरीर में का बुखार, नजला, जुकाम सब भाग जायेगा। कुछ दिन लगातार पियें।

५. पानी में मुलहटी डालकर जरा सा सोंठ का टुकड़ा डालकर उबालकर चाय बनावें। शरीर के सभी रोगों में लाभप्रद।

६. मेथी हरी की चाय बनायें। पानी में मेथी की पत्तियां उबालकर ढककर रखें ५ मिनट फिर छानकर पीयें। जायकेदार दुनिया की किसी भी बढिया लीफ टी से कम जायकेदार नहीं। शुगर के मरीजों के लिये, हाई बी.पी. के लिये रामबाण। बेमौसम के लिए मेथी सुखाकर रख लें।

७. दाना मेथी उबालकर चाय बनायें। गजब की खुशबू और जायका।

८. इसी प्रकार, सौंफ, अजवायन से बनायें।

९. सफेद मिर्च और मुनक्का उबालकर चाय बनायें। गैस बनती हो तो इसमें एक अंजीर भी डालें उबलने के पहले।

१०. बड़ी इलायची दो तीन एक प्याले चाय के लिये जल में खूब उबालें। कप में छानकर मीठे के लिये बताशे मिलायें। खूब पेशाब आएगा। कहीं पथरी होगी तो निकलेगी। और पथरी बनेगी नहीं। हाई बी.पी. में लाभकारी है।

११. खुशबूदार चाय–पोदीने के पत्तों को छलनी में रखकर ऊपर से उबलता पानी प्याले में छानें। यह चाय सरदर्द में तुरंत आराम पहुंचाती है।

१२. देसी गुलाब की पंत्तियां छलनी में रखकर इसी प्रकार प्याले में ब्लैक टी छानें। इतनी जायकेदार खुशबूदार चाय शायद कभी न पी हो। चाहें तो इस चाय में चाय की पत्तियां कम डालें जिससे चाय का रंग भी गुलाबी/केसरिया रहे।

१३. गुरुकुल कांगड़ी की चाय पाउच/डब्बे में मिलती है। उसमें चाय की पत्ती नहीं पड़ती। बड़ी ही स्वादु और गुणकारी होती है। मैं भी इसी प्रकार की चाय के भिन्न–भिन्न कंबीनेशन लिख सकता हूं लेकिन बनाने में परेशानी होगी इसलिए नहीं लिख रहा।

१४. अत्तार के यहाँ से निम्नलिखित सामान लावें–

| | |
|---|---|
| ५ ग्राम | गुल बनफशा |
| १० ग्राम | बनफशा |
| १० ग्राम | गुलाब फूल सूखे |
| १० ग्राम | तुलसी पत्ती सूखी |
| १० ग्राम | दालचीनी |

| | |
|---|---|
| ५ ग्राम | काली मिर्च |
| ५ ग्राम | सौंफ |
| ५ ग्राम | मुलैठी |
| ५ ग्राम | जटामासी |
| १० ग्राम | नागरमोथा |
| २ ग्राम | कुलीजंन |
| ५ ग्राम | लाल चंदन |
| २ ग्राम | सोंठ |
| १० ग्राम | बड़ी इलायची |
| ५ ग्राम | छोटी इलायची |
| ५ ग्राम | गाजबां |

सभी कूट पीसकर रख लें बंद डब्बे में। इसकी चाय बनायें। बाजार की चाय की पत्ती न मिलायें। जाड़ों के लिये उत्तम चाय। शुद्धतम घरं पर बनी।

— 'शैलेन्द्र भवन', शेखपैन स्ट्रीट, खुरजा

## वजन कम करें – चर्बी घटायें चाय से

एक बात ध्यान रखने की है कि वजन एक साथ न घटायें। एक महीने में अधिक से अधिक २ किलो। आजकल विज्ञापन आ रहे हैं एक महीने में ६ से १० किलो तक वजन कम करने के। नहीं कहा जा सकता कि वे विज्ञापन सही हैं या नही। इतना वजन घटना उचित नहीं है सेहत के लिए।

१. भोजपत्र उबालकर वह ब्लैक टी रोज पियें।

२. हल्की पत्ती की ब्लैक टी में एक बड़ी प्याली में खूब नीबू निचोड़ें। अच्छा लगे तो एक नीबू निचोड़ सकते हैं। एक बड़ा चम्मच–जितना अच्छा लगे, मीठे के लिये शहद मिलायें। रोज सुबह पियें।

३. खूब अदरक काली मिर्च उबालकर छानकर एक चम्मच शहद मिलावें। रोज पियें

उपरोक्त चाय के साथ नाश्ता न करें।

## बिना फैट का शुद्ध जायकेदार मक्खन

सुबह दही जमायें। शाम को उसे बिलोकर मक्खन निकाल लें। उस मठा को कपड़े में छनने में पतले दुहरे कपड़े में बांधकर लटका दें। पानी निकल जायेगा।

सुबह उस छनने से बचा हुआ सालिड निकाल लें। यह बिलकुल बिना फैट चिकनाई का मक्खन है। नमक, काली मिर्च मिलाकर इसे प्रयोग करें। बच जाये तो या तो फ्रिज में रखकर उपयोग में लायें या इसमें ताजा जल मिलाकर जितना गाढ़ा चाहें उतना गाढ़ा दही बना लें फेंटकर।

---

# पारदर्शी –गीत

खेलें खेल खिलाड़ी सारा,
इसको समझे समझनवारा।।
जनम–मरण सब उसी हाथ है।
कौन कहाँ बिछड़े व साथ है।
लक्षा –लक्ष यौनियाँ जग में,
रचना रची अपारा ।।१।। खेलें........
न्यारी–न्यारी प्रतिभा देता।
श्रम का फल दे कुछ ना लेता।
चमत्कार नित–नूतन करता,
जग का पालन हारा।।२।। खेलें......
लीला तेरी अन्त न पाए।
खोज–खोज मानव थक जाए।
शुरू कहाँ से होता ये जग,
कौन है सृजनहारा ।।३।। खेलें......
जिसने तेरे दर्शन पाए।
समझ "पारदर्शी" बन जाए।
दिखा सके न रूप तुम्हारा,
तुमको देखनवारा ।।४।। खेलें......

***

ॐ पारदर्शी
उत्तरी आयड, उदयपुर –३१३००१

## चिन्तन कण–१

# जीव का मरण हिंसा नहीं

जीव कभी मरता नहीं। यदि जीव का मरण होता तो जीव को स्मृति ज्ञान न होता, न कर्मों की सत्ता होती, न पुनर्जन्म होता, न धर्म–अधर्म, हिंसा–अहिंसा, नरक–मोक्ष की चर्चा होती, जगत आदि अन्तवाला होता और जगत में हो रहे परिवर्तन का चक्र रुक जाता। जन्म–मरण जीव का नहीं, जीव की देह का पुरानी देह छोड़ नई देह होने की क्रिया देह की आयु के अन्त होने पर प्रकृति रूप में वैसे ही होती है जैसे सर्प में केंचली छोड़ने की होती है। आयु देह की होती है कि देह कब तक जीव से मिली रहेगी। आत्मा (चेतन) और देह का मिला रूप जीव होता है। जब जीव मरता नहीं तो उसके मरने और मारने के विचार अज्ञान जन्य कल्पना है। हिंसा जीव का मरण नहीं और हिंसा जीव के मरने से होती नहीं। हिंसा का अर्थ है हीन+सा=अर्थात् पर को ही न समझना है। पर को ही न समझने से ही आपस में विवाद और संघर्ष होता है। जो अशान्त करता है। जीव को सुख शान्ति पाने के लिये अहिंसक होना पड़ेगा। अहिंसक जीव को जिओ और जीने दो की भावना से कर्म करना होगा। अन्यथा सुखशान्ति पाने का संघर्ष होगा। न जीव पर को सतायेगा और न पर से सताया जावेगा। नियम है जो जैसा कर्म करता है वह उसी के अनुरूप फल पाता है। क्रिया की प्रतिक्रिया होती है जो क्रिया के अनुरूप होती है। यही बदला लेना है। मुनि वर्ग हिंसा का अर्थ जीव का मरना लगाकर अपने साथ अपने भक्तों को भी अज्ञानी बनाता है। अतएव दोनों को अपनी भूल पर विचार कर अपनी भूल स्वीकार करना होगा। मुनि वर्ग अपनी भूल स्वीकार करने में हिचके नहीं और मुनिभक्त मुनि को मुनि की भूल को स्वीकार कराने में संकोच नहीं करना होगा। अन्यथा भावी पर्याय में उन्हें धोखा देने और धोखा खाने के परिणाम भोगना पड़ेंगे। ध्यान रहे आज का किया आज फल देता नहीं जैसे आज का बोया आज होता नहीं। जैसे बीज एक मौसम में बोया जाता है और दूसरे मौसम में फल देता है। उसी प्रकार जीव एक जन्म में कर्म करता है और दूसरे जन्म में उसका फल पाता है।

– धन्य कुमार जैन
सिहोरा (जबलपुर) म. प्र.

## चिन्तन कण–२

# मानव की जीवन यात्रा

एक बात बिल्कुल सच मानिए जिन्दगी में मृत्यु से ज्यादा सुनिश्चित कुछ भी नहीं है। मृत्यु सर्वाधिक सुनिश्चित है। जीवन मिला है तो जीवन में धन मिले, न मिले कोई यह जरूरी नहीं है। लेकिन मृत्यु मिलेगी यह निश्चित है। जीवन में पद, पैसा, प्रतिष्ठा मिले कोई जरूरी नहीं लेकिन मृत्यु अवश्य मिलती है। आदमी पैदा हुआ, पढ़–लिख पाये, न पाये कोई जरूरी नहीं है, लेकिन मृत्यु जरूर पायेगा। जब मृत्यु निश्चित है तो उससे भय खाने की जरूरत नहीं है। मृत्यु, अमृत है; उससे ही जीवन का प्रादुर्भाव होता है। मृत्यु एक मंदिर है, जिसमें जीवन का देवता विराजित है।

मृत्यु जीवन का सबसे बड़ा शास्त्र है; इसे पढ़े बगैर जीवन मुक्ति संभव नहीं है। मैं भी कहूँगा कि जीवन में एक ही शास्त्र पढ़ने जैसा है और वह है मृत्यु शास्त्र। दुनिया के तमाम शास्त्र पढ़ डालो। तमाम मजहबों और धर्मों के प्रतिनिधि ग्रंथों को पढ़ डालो, पर जीवन का सत्य समझ में आ ही जाये इसकी कोई गारन्टी नहीं है। गीता पढ़ लो कुरान पढ़ लो, वेद पढ़ लो, पुराण पढ़ लो, बाईबिल पढ़ लो, जिन सूत्र पढ़ लो पर जीवन का यथार्थ, जीवन का सत्य समझ में ही आ जायेगा ऐसा जरूरी नहीं है, लेकिन मृत्यु शास्त्र पढ़ लेने के बाद जीवन का शास्त्र अपने–आप समझ में आ जाता है। मृत्यु का स्वाध्याय जिन्दगी का असली स्वाध्याय है। हजार शास्त्र पढ़ लेने के बाद भी मृत्यु का शास्त्र समझ में आ जाये ऐसा कुछ भी जरूरी नहीं है। लेकिन मृत्यु का शास्त्र पढ़ लेने के बाद दुनिया के सारे शास्त्रों के रहस्य स्वतः ही समझ में आ जाया करते हैं। इसलिए मृत्यु को भुलाकर नहीं; अपितु मृत्यु को बुलाकर जिएं। मृत्यु को विसारकर नहीं, अपितु स्वीकार कर जियें। मृत्यु से डरकर नहीं अपितु लड़कर जियें। मृत्यु को अपनी छोटी बहिन मानकर जियें और यदि तुमने उसे छोटी बहन माना तो तय है कि वह रक्षाबंधन पर तुम्हारी कलाई पर राखी बांधेगी।

जन्म मात्र दुर्घटना नहीं, वह तो जीवन का एक अंग है। भगवान महावीर कहते हैं जिस तरह जन्म उत्सव है उसी तरह मृत्यु को भी महोत्सव का रूप दिया जा सकता है। जन्म है तो मृत्यु भी है, मौत भी है। शुरूआत है तो अंत भी है। दरअसल जिन्दगी के दो छोर हैं, एक छोर है जन्म तो दूसरा छोर है मृत्यु। जन्म और मृत्यु इन दो किनारों के बीच जिन्दगी का जल बहा करता है। मृत्यु क्या है इसको समझें, इससे पहले यह समझ लें कि जिन्दगी क्या है। क्योंकि दुनिया में बहुतेरे ऐसे लोग भी हैं जो जिंदा हैं। लेकिन उन्हें नहीं पता कि वे क्यों जिंदा है? जो जी रहे हैं लेकिन उनके जीने का कोई उद्देश्य नहीं है।

**– शान्तिलाल जैन बैनाड़ा**
**५/४४८, नाई की मण्डी, आगरा**

# मील का पाषाण

६ फरवरी, बसंत पंचमी को ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ में इतिहास–मनीषी, विद्यावारिधि स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन के १२वें जन्म दिन पर एक स्मृति गोष्ठी वयोवृद्ध लब्धप्रतिष्ठ गीतकार श्री रवीन्द्र कुमार 'राजेश' की अध्यक्षता में सम्पन्न हुई। श्री लूणकरण नाहर मुख्य अतिथि रहे और संचालन श्री रमाकान्त जैन ने किया। वाग्देवी सरस्वती की मूर्ति एवं श्रद्धेय डाक्टर साहब के चित्र पर माल्यार्पण और दीप प्रज्ज्वलन तथा डाक्टर साहब द्वारा रचित 'वीतराग स्वरूपम्' व 'जय महावीर नमो, के समवेत गायन और श्री रमाकान्त जैन द्वारा वाणी–वंदना से कार्यक्रम का शुभारंभ हुआ।

ज्योति प्रसाद जैन ट्रस्ट के अध्यक्ष डॉ. शशिकांत ने समागत सभी का स्वागत करते हुए भारतीय इतिहास, संस्कृति, इतिहास के जैन स्रोत और जैन विद्या के विभिन्न अंगों पर अपनी लेखनी से मील का पाषाण बने श्रद्धेय डाक्टर साहब के कृतित्व पर प्रकाश डाला और डाक्टर साहब की जन्मशती होने के पूर्व उनकी अप्रकाशित कृतियों के खण्डशः प्रकाशित करने की इच्छा व्यक्त की। श्री अंशु जैन ने डाक्टर साहब के आलेख –'इतिहास की उपयोगिता' का वाचन किया। श्री लूणकरण नाहर ने स्वरचित भजन "अब सब भार तुम्हारे हाथों में। है जीत तुम्हारे हाथों में, है हार तुम्हारे हाथों में" सुनाया। डॉ. सुभाष चन्द्र 'गुरुदेव' ने राष्ट्रभावना को स्वर देते हुए अपनी रचना पढ़ी "खेला बहुत खिलौनों से हूं, अब मुझको शमशीर चाहिये। बापू यदि कुछ दे सकते हो, तो मुझे अब कशमीर चाहिये।" इंजी. राजीव कांत जैन ने श्रद्धेय डाक्टर साहब को समर्पित अपनी रचना 'मील का पाषाण' सुनाई और अपनी भावप्रवण रचना 'मैं' का वाचन किया। इसी क्रम में डॉ. शशिकांत से उनकी ललित रचना "स्मृति को झंकृत कर दे ऐसा राग सुनाता जा" तथा व्यंग्य रचना "हम हिन्दू हैं, हमें आतंक में जीने की आदत है" सुनने को मिली। श्री नरेशचंद्र जैन ने श्रद्धेय डाक्टर साहब से सम्बंधित अपने संस्मरण सुनाते हुए बताया कि उन्हें वे पुत्रवत स्नेह देते थे और अध्ययन–लेखन हेतु सतत प्रेरणा देते थे। गोष्ठी में समुपस्थित सभी ने श्रद्धेय डाक्टर साहब को अपने श्रद्धासुमन अर्पित किये।

अपनी क्षणिकाओं और बसंत पंचमी पर अपनी रचना "बस अन्त आया शीत का बसन्त आ गया। बसन्ता का किस्सा समाचार पत्रों में छा गया।" से श्री रमाकान्त जैन ने जहाँ श्रोताओं को गुदगुदाया, वहीं गीतकार राजेश जी ने अपने गीतों– "स्वागत है ऋतुराज तुम्हारा, यौवन से परिपूर्ण प्रकृति का तुमने रूप

निखारा" तथा "भीगी पलकों ने भीतर तक सब कुछ खोल दिया" से वातावरण रससिक्त कर दिया।

निराला जी का जन्म दिन होने के कारण गोष्ठी में उनको भी स्मरण किया गया और राजेश जी ने उनको अर्पित अपनी रचना "पर सेवा ही को कवि तुमने पूजन–दर्शन माना, गद्य–पद्य का सृजन तुम्हारा सबने सदा बखाना, किन्तु तुम्हारे रहते कब तुमको किसने पहचाना" सुनायी।

इधर हाल ही में दिवंगत हुए स्वजनों, विद्वान्‌ मनीषियों और समाजसेवियों सर्वश्री सूर्यकान्त जैन, श्रीपाल जैन, अभय कुमार जैन, पं. अमृतलाल शास्त्री, चन्द्रोदय दीक्षित, डॉ. शिवमंगल सिंह 'सुमन', डॉ. एम. डी. वसन्तराज, डॉ. हरिवंशराय बच्चन, सुरेन्द्रनाथ जैन, जयनारायण जैन, भगतराम जैन और कल्पना चावला को श्रद्धांजलि अर्पित कर गोष्ठी का समापन हुआ।

**– अंशु जैन 'अमर'**
**ज्योति निकुंज,**
**चारबाग, लखनऊ**

---

# कुन्दकुन्द–सूक्ति–सुधा

**णाणं णरस्स सारो।**
–दर्शनपाहुड, गाथा ३१
(मनुष्य के लिए ज्ञान ही सारभूत है।)

**णाणेण लहदि लक्खं।**
–बोधपाहुड, गाथा २०
(ज्ञान से लक्ष्य की प्राप्ति होती है।)

**णाणादो सव्वभाव उवलद्धी।**
– दर्शनपाहुड, गाथा १५
(ज्ञान से सभी भावों की उपलब्धि होती है।)

**णाणं चरित्तहीणं णिरत्थयं सव्वं।**
– शीलपाहुड, गाथा ५
(ज्ञान चरित्र से रहित हो तो सब निरर्थक है।)

# विद्वत् परिषद ने भी वासोकुण्ड को ही सही कुण्डलपुर स्वीकार किया

श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद (पंजीकृत) की ८.२.२००३ को फरीदाबाद में आयोजित बैठक में समाज की वर्तमान परिस्थितियों पर विस्तार से चर्चा की गई तथा भगवान महावीर की जन्मस्थली कुण्डपुर (विदेह) के संबंध में निम्न प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ।

"जैनाचार्यों ने जैनधर्म के चौबीसवें तीर्थंकर महावीर की जन्मस्थली कुण्डपुर (विदेह) को मान्य किया है। आचार्य पूज्यपाद की **निर्वाणभक्ति**, आचार्य जिनसेन के **हरिवंशपुराण**, आचार्य गुणभद्र के **उत्तरपुराण**, श्री असग के **वर्द्धमान चरित**, आचार्य दामनन्दि के **पुराणसारसंग्रहान्तर्गत वर्द्धमान चरित**, विबुध श्रीधर के **वड्ढमाणचरिउ**, महाकवि पुष्पदंत के **वीरजिणिंदचरिउ**, आचार्य सकलकीर्ति के **वीरवर्द्धमानचरित**, मुनि धर्मचंद के **गौतमचरित्र** एवं पंडित आशाधर के **त्रिषष्ठिस्मृतिशास्त्र** से भी तीर्थंकर महावीर की जन्मस्थली कुण्डपुर (विदेह) ही सिद्ध होती है। आचार्य वीरसेन, आचार्य गुणभद्र, महाकवि विमलसूरि, आचार्य रविषेण आदि जिन जिन पूर्वाचार्यों ने मात्र कुण्डपुर लिखा है उसका तात्पर्य कुण्डपुर (विदेह) ही है।

वर्तमान समय में आचार्य ज्ञानसागर ने अपने महाकाव्य **'वीरोदय'** में तथा आर्यिका ज्ञानमती व आर्यिका चन्दनामती ने अपनी पूर्व रचनाओं में वैशाली स्थित कुण्डपुर (विदेह) को ही भगवान महावीर की जन्मस्थली स्वीकार किया है।

भारत सरकार, बिहार सरकार, अ.भा.दि. जैन तीर्थक्षेत्र कमेटी तथा अन्य संस्थाओं, जैन–जैनेतर इतिहासज्ञों, शिक्षाविदों, पुरातत्त्वविदों, मनीषी लेखकों ने वैशाली स्थित कुण्डपुर (विदेह) को ही भगवान महावीर की जन्मस्थली स्वीकार किया है। यह स्थान कुण्डपुर (विदेह) या कुण्डग्राम वर्तमान में मुजफ्फरपुर जिले के वैशाली निकटस्थ वसाढ़ नगर के समीप वासोकुण्ड है। लोक परंपरा से आज भी यहां की ढाई बीघा जमीन को भगवान महावीर की जन्मस्थली होने के कारण पवित्र मानकर 'अहल्य' (जिस भूमि पर खेती हेतु हल न चलाया जाए) माना जाता है एवं दीपावली के दिन दीपक जलाया जाता है।

उक्त संदर्भों के प्रकाश में श्री अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद् आज दिनांक ८ फरवरी, २००३ शनिवार को श्री आदिनाथ दिगम्बर जैन मंदिर, सेक्टर १०, फरीदाबाद में आयोजित पंचकल्याणक महोत्सव के पावन अवसर पर

सम्पन्न अपनी बैठक में कुण्डपुर (विदेह) (वासोकुण्ड, वैशाली) को ही भगवान महावीर की जन्मस्थली की पुष्टि करती है। शासन तथा समग्र जैन समाज से अनुरोध है कि सभी सद्भावना एवं परस्पर सहयोगपूर्वक इसके विकास में अपना सहयोग देवें।"

**— डॉ० सत्यप्रकाश जैन, महामंत्री**

## आचार्य भरतसागर जी का भी यही अभिमत

वात्सल्य रत्नाकर स्व. आचार्य विमलसागर जी महाराज के शिष्योत्तम एवं पट्टधर आचार्य श्री भरतसागर जी महाराज ने डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल (अमलाई) को सिद्धक्षेत्र श्री सोनागिर जी पर दर्शनोपरान्त चर्चा करने पर निम्नलिखित निर्देश दिया—

"भगवान महावीर की जन्मभूमि कुण्डग्रामपुर (वासोकुण्ड) के दर्शन मैंने किए हैं और वही भगवान महावीर की जन्मभूमि है। विद्वान त्यागियों एवं समाज को इस विवाद में पड़कर विग्रह पैदा नहीं करना चाहिए।"

**— आचार्य भरतसागर**

**प्रस्तोता—डॉ. राजेन्द्र कुमार बंसल**

**दिनांक ६.२.२००३**

---

## सांची के जैन मंदिर को तोड़ने के आदेश निरस्त

सांची में विश्व प्रसिद्ध बौद्ध स्तूप के समीपस्थ शीतलनाथ दिगम्बर जैन मंदिर को तोड़ने के आदेश भारत के पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग ने दिये थे। चूंकि यह मंदिर उक्त स्तूप से १०० मीटर की परिधि के भीतर, निर्माण निषेध करने वाले कानून बनने के पूर्व बाकायदा अनुमति लेकर बनाया गया था, जैन संस्कृति रक्षा मंच, जयपुर के पदाधिकारियों ने पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग के आदेश के विरोध में भारत सरकार को विस्तृत ज्ञापन दिया। साथ ही उपराष्ट्रपति श्री भैरोसिंह शेखावत से मिलकर उनसे इस मामले में हस्ताक्षेप करने का अनुरोध किया। भारत सरकार में एक उच्च स्तरीय बैठक में इस मामले में विचार किया गया और पुरातत्व विभाग के आदेश को निरस्त करने का निर्णय लिया गया। इस निर्णय की सूचना केन्द्रीय पर्यटन एवं संस्कृति तथा संसदीय कार्य राज्यमंत्री श्रीमती भावनाबेन डी. चिखलिया ने अपने २७ मार्च, २००३ के पत्र द्वारा उक्त मंच के अध्यक्ष श्री मिलापचंद डंडिया को दी है।

# समाचार विमर्श

— श्री अजित प्रसाद जैन

## विद्वत्परिषद का २३वां अधिवेशन

अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद रजि. (डॉ. रमेशचंद्र गुट) का २३वां अधिवेशन दि. १५–१६–१७ अक्टूबर, २००२को श्री दिगम्बर जैन पार्श्वनाथ अतिशय क्षेत्र बिजौलिया (जिला भीलवाड़ा–राज.) में मुनि श्री सुधासागर जी महाराज के सान्निध्य में तथा डॉ. फूलचंद्र प्रेमी (वाराणसी) की अध्यक्षता में उल्लासपूर्ण वातावरण में सम्पन्न हुआ।

अधिवेशन में १२५ विद्वज्जनों की उपस्थिति दर्ज की गई।

वि. परिषद का यह अधिवेशन परिषद द्वारा 'विद्वानों की विशिष्ट सम्मान पुरस्कार परम्परा को पुनर्जीवित करने के अतिरिक्त मुनि श्री की प्रेरणा एवं मार्गदर्शन में देवगढ़, सांगानेर, बजरंगगढ़, बैनाड़ और बिजौलिया तीर्थक्षेत्रों पर कराए गए जीर्णोद्धार–विकास के कार्यों की भूरि–भूरि सराहना व अनुमोदन करने तथा जैन संस्कृति संरक्षण संघ आदि के द्वारा उसका विरोध किए जाने की तीव्र भर्त्सना करने एवं मुनि श्री का गुणगान करने तक ही मुख्यतः सीमित रहा। बिजौलिया तीर्थ के विषय में भी निम्नलिखित महत्वपूर्ण प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित किया गया–

"अखिल भारतवर्षीय दिगम्बर जैन विद्वत् परिषद साधारण सभा का यह २३वां अधिवेशन सर्वसम्मति से प्रस्ताव करता है कि बिजौलिया (जिला भीलवाड़ा) राज. में उपलब्ध विशाल शिलालेखों के साक्ष्यों के आधार पर स्पष्ट है कि यहां पर भगवान पार्श्वनाथ पर कमठ द्वारा उपसर्ग किया गया था। शास्त्रानुसार उपसर्ग के बाद उन्हें केवलज्ञान की उत्पत्ति हुई थी। अतः (यह) भगवान पार्श्वनाथ की केवल ज्ञानोत्पत्ति और प्रथम समोशरण–सभा भूमि शिलालेखों के आधार पर सिद्ध होती है। विद्वत् परिषद का यह अधिवेशन श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र बिजौलिया की प्रबंध समिति द्वारा किये गए क्षेत्र के संरक्षण एवं विकास के कार्यों की सराहना करता है तथा इसके विकास के लिए विद्वत्परिषद के सदस्यों के सहयोग की भावना व्यक्त करता है।

विद्वत्परिषद के माननीय सदस्य इस क्षेत्र के दर्शन से अपने को पुण्यभागी समझते हैं तथा सम्पूर्ण देश में इसके प्रचार–प्रसार का संकल्प लेते हैं।"

इस संबंध में यह उल्लेखनीय है कि **आदि पुराण** के कर्ता भगवज्जिन सेनाचार्य के परम शिष्य आचार्य गुणभद्र ने अपने गुरुवर्य द्वारा रह गए अधूरे कार्य को पूरा कराने की दृष्टि से शेष २३ तीर्थंकरों के पुराण चरित को समाहित करने वाले अपने सुप्रसिद्ध ग्रंथ **उत्तर पुराण** की शक सं. ८५५ में रचना की थी तथा इस पुराण ग्रंथ में ही सर्वप्रथम २३वें तीर्थंकर भगवान पार्श्वनाथ का क्रमबद्ध जीवन वृत्त उपलब्ध होता है। परवर्ती प्रायः सभी पुराणकारों ने भी इसी वृत्त को अपनाया है।

**उत्तर पुराण** के अनुसार, जब पार्श्व कुमार ३० वर्ष की आयु के हुए तो उन्हें वैराग्य हो गया और उन्होंने वाराणसी नगर के बाहर अश्ववन में दीक्षा ग्रहण कर ली।

कविवर पं. भूधर दास जी ने अपनी कृति **श्री पार्श्व पुराण** में इस दीक्षा वन को वाराणसी नगर के "न अति निकट न दीसे दूर" बताया है। गुल्म खेट के राजा धन्य से दीक्षोपरान्त प्रथम आहार ग्रहण करके वे अन्यत्र बिहार कर गए। पुनः चार मासोपरान्त उसी दीक्षा वन में आकर वे एक विशाल देवदार वृक्ष के नीचे सात दिन का योगधारण कर ध्यानस्थ हो गए।

इसी समय आकाश मार्ग से जा रहे (कमठ के जीव) शम्बर ज्योतिष देव ने अपना विमान रुकने से पूर्व भव का वैर स्मरण हो आने पर योगीराज पार्श्वनाथ पर घोर उपसर्ग किया। अवधि ज्ञान से भगवान पर घोर उपसर्ग का बोध होने पर धरणेन्द्र ने पृथ्वी तल से सपत्नीक निकल कर उन्हें अपनी फणावलि पर ऊपर उठा लिया तथा उसकी पत्नी ने उन पर वज्रमय छत्र तान दिया। तदनन्तर भगवान के ध्यान के प्रभाव से उनका मोहनीय कर्म क्षीण हो गया इसलिए कमठ का सब उपसर्ग दूर हो गया। तब मुनिराज पार्श्वनाथ ने द्वितीय शुक्ल ध्यान के द्वारा अवशिष्ट तीन घातिया कर्मों का नाश कर दिया और उन्हें केवल ज्ञानोत्पत्ति हो गई। (पर्व ७३/१२७–१४४)

उपरोक्त उद्धरण से यह सुस्पष्ट है कि पुराण शास्त्र के अनुसार भगवान पार्श्वनाथ ने वाराणसी नगर के बाहर के अश्ववन में दीक्षा ग्रहण की थी तथा उसी वन में चार माह बाद उन पर कमठ का उपसर्ग व केवल ज्ञानोत्पत्ति हुई थी। भगवान पार्श्वनाथ के काल का वाराणसी नगर असी और वरुणा नदी (अब नाले) से परिवेष्टित था तथा वाराणसी नगर के बाहर गंगा तट वन था जिसमें कई तापसों के आश्रम थे। कमठ तापस का आश्रम भी इसी वन में था। इसलिए कुछ कथाकारों ने इसका नाम आश्रम वन भी कहा है। वाराणसी की दिगम्बर जैन

समाज को चाहिए कि जन्म मंदिर भेलपुरा व गंगा तट के बीच किसी उपयुक्त स्थान को चिन्हित कर भगवान पार्श्वनाथ के दीक्षा व केवल ज्ञान–प्रथम समवशरण स्थल तीर्थ की स्थापना करे तथा वहाँ एक देवदारु वृक्ष का भी रोपण करें।

बिजौलिया क्षेत्र के प्रसंगगत शिलालेख (जिसको विद्वत्परिषद ने अपने प्रस्ताव का आधार बनाया है) की श्लोक सं. ६० में यह अंकित किया गया है कि यही वह भूमिवन है जहाँ जिनराज का वास है, ये ही वे शिलाएं हैं जिन्हें कमठ ने आकाश में फेंका था तथा यही वह कुंड और सरिता है जहाँ (पार्श्वनाथ) परम सिद्धि को प्राप्त हुए थे (पुराण शास्त्रों में किसी कुंड या सरिता का उल्लेख नहीं मिलता)।

बिजौलिया क्षेत्र की स्थापना (मंदिर का निर्माण व मूर्ति की प्रतिष्ठा) भट्टारक जिनचन्द्र जी के तत्वावधान में प्राग्वाटवंशीलोलर्क श्रेष्ठी द्वारा वि.सं. १२२६ में ही कराई गई थी और तभी उक्त शिलालेख भी उत्कीर्ण कराया गया होगा।

ऐसा लगता है कि शिलालेख में इस स्थल पर जिनराज का वास होने का तथा इसे भगवान पर कमठ के उपसर्ग व केवलज्ञानोत्पति का स्थल घोषित करने का उद्देश्य श्रावकों की इस क्षेत्र के प्रति श्रद्धा जाग्रत करना मात्र ही रहा होगा।

विस्मय होता है कि शास्त्रमर्मज्ञ माने जाने वाले विद्वज्जनों ने पौराणिक साक्ष्यों की नितान्त उपेक्षा करते हुए तीर्थंकर पार्श्वनाथ के तप–ज्ञान कल्याणकों की सही स्थली घोषित करने के लिए घटना के दो हजार वर्ष से भी बाद के उत्कीर्ण एक लेख को अपनी सर्वसम्मति का आधार बनाया। ऐसे प्रस्तावों से तो उक्त संस्था से जुड़े माननीय विद्वज्जनों की प्रामाणिकता पर ही प्रश्न चिह्न लगता है।

## आचार्यश्री द्वारा विवाह–निषेध का उपदेश

"धरियावद (राज.), ३० दिसम्बर, २००२ को आचार्य श्री आदि सागर अंकलीकर, आचार्य महावीरकीर्ति और आचार्य विमलसागर की प्रतिमाओं के आचार्य सन्मतिसागर व बालाचार्य योगीन्द्रसागर ससंघ के सान्निध्य में विराजमान किए जाने के उपरांत आचार्य सन्मतिसागर जी ने सभा को अपना आशीर्वाद देते हुए कहा कि **प्रत्येक प्राणी को विवाह से दूर रहना चाहिए।** इससे आत्महित और सुख, शांति नहीं मिलती।" (अंकलीकर वाणी: २० जनवरी, २००३ से साभार)

अंकलीकर परम्परा के तृतीय पट्टाचार्य श्री सन्मतिसागर महाराज के उपरोक्त उपदेश को पढ़कर हम चकित रह गये। मानव सभ्यता के आदि युग में मानव को अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिये प्रकृति की सीमित उदारता पर

ही निर्भर न रहकर स्व तथा सामुदायिक पुरुषार्थ से अपना तथा अपने समाज का जीवन स्तर सुधारने का पाठ पढ़ाने वाले आदि पुरुष, आदि समाज शास्त्री एवं समाज नेता अंतिम कुलकर नाभिराय के पुत्र आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव ने कुमारावस्था में समाज के सुदृढ़ संगठन के लिए सामाजिक इकाई के रूप में परिवार के महत्व को समझा तथा मानव के समुचित शारीरिक, सामाजिक तथा आध्यात्मिक विकास के लिए स्वच्छन्द यौनाचार को मर्यादाओं की सीमा में बांधने की आवश्यकता को महसूस किया। इस सबके निदान के लिए उन्होंने विवाह प्रथा का अविष्कार किया तथा स्वयं प्रथम विवाह करके मानव समाज का मार्गदर्शन किया। मानव समाज ने विवाह प्रथा को शीघ्र ही अपना लिया और अब यह प्रथा विश्व भर में सभ्य समाज का अनिवार्य अंग बन गई है, विवाहेतर यौनाचार निन्दनीय समझा जाता है तथा उससे जन्मी संतान को भी सामाजिक मान्यता नहीं मिलती।

हम आचार्यश्री के इस विचित्र उपदेश का आशय ठीक–ठीक नहीं समझ पा रहे हैं। यह भी हो सकता है कि आचार्य श्री का गृहस्थ जीवन बहुत अशान्तिमय रहा हो जिससे खिन्न, विरक्त हो उन्होंने गृह त्याग किया हो तथा उसी की कष्टदायी स्मृति ने उन्हें यह उपदेश देने को प्रेरित किया हो। या फिर आचार्य श्री देश की द्रुतगति से बढ़ती जा रही जनसंख्या से चिन्तित हुए हों जिसको रोकने में सभी सामाजिक व शासकीय उपाय करोड़ों, अरबों रुपए प्रतिवर्ष खर्च करने के बावजूद अब असफल ही सिद्ध हुए हैं। न होगा बांस न बजेगी बांसुरी, न होगा विवाह न होंगी वैध सन्तानें। अवैध सन्तानें तो सामाजिक स्वीकृति न मिलने के कारण अत्यल्प होंगी ही, हो तो यह भी सकता है कि आचार्य श्री विवाह को एक व्यर्थ का बंधन मानकर अत्याधुनिक उन्मुक्त प्रेम व्यापार की अत्याधुनिक संस्कृति से प्रभावित होकर उसके प्रशंसक बन गए हों।

आज कल एक युवा मुनि श्री जो अपने को क्रांतिकारी मुनि की पदवी से अलंकृत किए हुए हैं भगवान महावीर को व्यस्त चौराहों पर खड़ा करने की बात कर रहे हैं। हमारी समझ में अंकलीकर जी के तृतीय पट्टाचार्य श्री सन्मतिसागर जी महाराज से बड़ा क्रांतिकारी धर्मोपदेशक कदाचित् ही कभी कोई पैदा हुआ होगा तथा वे ही क्रांतिकारी का विरुद धारण करने के सर्वाधिक अधिकारी हैं।

# समाचार विविधा

## जैन विश्वभारती, लाडनूं से जैन विषयों पर पी–एच. डी. और डी.लिट्.

डॉ. रतनलाल जैन, हांसी, ने जैन विश्वभारती (मान्य विश्वविद्यालय) लाडनूं (राजस्थान) द्वारा वर्ष १६६६ से १६६६ तक प्रदत्त पी–एच.डी. और डी. लिट्. उपाधियों का जो विवरण भेजा है उसके अनुसार जैन विषयों पर निम्नलिखित उपाधि प्रदान की गई हैं–

| क्रम सं. | शोधार्थी का नाम | शोध प्रबंध का नाम | उपाधि | तिथि |
|---|---|---|---|---|
| १. | सुश्री सुधा जैन | जैन योग और बौद्ध योग का तुलनात्मक अध्ययन | पी–एच.डी. | ५.७.६६ |
| २. | समणी स्मित प्रज्ञा | सम्बोधी का समीक्षात्मक अनुशीलन | तदैव | ५.१०.६६ |
| ३. | श्री प्रद्युम्न शाह | जैन एवं बौद्ध न्याय में अनुमान का तुलनात्मक अध्ययन | तदैव | १५.१०.६६ |
| ४. | श्री प्रवीण सी. कामदार | Business Ethics and Social Responsibilities: Jain Perspective | डी.लिट्. | २३.१२.६६ |
| ५. | सुश्री निर्मला चौरडिया | स्थानांग सूत्रः एक सांस्कृतिक अध्ययन | पी–एच.डी. | १०.६.६७ |
| ६. | श्री एस. राजेश कुमार | गुट निरपेक्ष आन्दोलनः विश्व शांति हेतु एक नीति (अनेकांत के संदर्भ में) | तदैव | ३१.७.६७ |
| ७. | समणी कुसुम प्रज्ञा | सामयिक निर्युक्तिः पाठ संपादन एवं परिशीलन | तदैव | १०.३.६८ |
| ८. | साध्वी श्रुतयशा | नन्दीसूत्र का ज्ञान मीमांसात्मक विश्लेषण | तदैव | १०.३.६८ |
| ६. | समणी निर्वाण प्रज्ञा | अहिंसा का शिक्षण और प्रशिक्षणः एक समीक्षात्मक अध्ययन | तदैव | ५.६.६८ |
| १०. | साध्वी मुदित यशा | सन्मति तर्क प्रकरणः एक समीक्षात्मक अध्ययन | तदैव | ११.६.६८ |
| ११. | समणी चैतन्य प्रज्ञा | भगवती में अध्यात्म और विज्ञान के कुछ तत्व | तदैव | १.७.६८ |
| १२. | श्री चिन्ताहरण बेताल | Effects of the | तदैव | १६.१०.६६ |

| | | | |
|---|---|---|---|
| | Preksha Meditation on Drug Abusers, Personality | | |
| १३. श्री आलोक आनन्द | पारिवारिक शांति में अनेकान्त की भूमिका | तदैव | २२.१०.९९ |

## रीवा विश्वविद्यालय में जैन शोध पीठ की स्थापना

अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा की कार्य परिषद ने, जैन शोध पीठ की स्थापना का प्रस्ताव पारित किया है और उसके लिये विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के शोधाधिकारी डॉ. बारेलाल जैन को अधिकृत किया है तथा उसके लिये एक करोड़ का बजट निर्धारित किया है।

## कल्पद्रुम विधान और पंचकल्याणक महोत्सवों की धूम

१ से १० दिसम्बर, २००२ तक बरेला (जबलपुर) में कल्पद्रुम महामंडल विधान सम्पन्न हुआ। ५ से १० दिसम्बर तक श्री कम्पिल जी में भ. विमलनाथ का पंचकल्याणक महोत्सव सोल्लास मना। ५ से १२ दिसम्बर तक गोपाचल (ग्वालियर) में पंचकल्याणक महोत्सव त्रय गजरथ फेरी के साथ आयोजित हुआ। २० से २२ दिसम्बर तक भ. संभवनाथ की जन्मस्थली श्रावस्ती में सर्वतोभद्र प्रतिमा का प्रथम महामस्तकाभिषेक समारोह धूमधाम से सम्पन्न हुआ। मदनगंज–किशनगढ़ में १७ से १९ जनवरी, २००३ तक वेदी प्रतिष्ठा एवं कलशारोहण महोत्सव मना। १९ से २३ *जनवरी तक अतिशय क्षेत्र श्रेयांसगिरि (पन्ना) में भव्य पंचकल्याणक प्रतिष्ठा* महोत्सव आयोजित हुआ। १९ से २६ जनवरी तक भोपाल में वेदी प्रतिष्ठा पंचकल्याणक एवं पंच गजरथ महोत्सव मना। १९ से २६ जनवरी तक नागपुर में कल्पद्रुम महामण्डल विधान सम्पन्न हुआ। ३० जनवरी से ६ फरवरी तक जियागंज मुर्शिदाबाद में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव मना। ३१ जनवरी से ६ फरवरी तक 'मंगलायतन', अलीगढ़ में पंचकल्याणक महोत्सव सोल्लास सम्पन्न हुआ जिसका उद्घाटन केन्द्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री डॉ. मुरली मनोहर जोशी ने किया और समापन समारोह में उप प्रधानमंत्री लालकृष्ण आडवाणी उपस्थित रहे। २ से ८ फरवरी तक सदलगा कल्याणोदय तीर्थक्षेत्र (कर्णाटक) में श्रीमज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक महोत्सव, विश्वशांति महायज्ञ और रथोत्सव का आयोजन हुआ। ३ से ८ फरवरी तक गोमती नगर, लखनऊ में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव भव्यता के साथ सम्पन्न हुआ। सोनीपत में ६ से १२ फरवरी तक भ. शांतिनाथ जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्राण–प्रतिष्ठा महोत्सव मना। ७ से १२ फरवरी तक

कुण्डलपुर (नालंदा) में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं महाकुंभ मस्तकाभिषेक महोत्सव सम्पन्न हुआ। १८ से २४ फरवरी तक तक सिंहोनिया जी, जिला मुरैना में श्रीमज्जिनेन्द्र पंचकल्याणक, नेमिनाथ जिनबिम्ब प्रतिष्ठा, गजरथ एवं १००० वर्ष पूर्व भूगर्भ से प्राप्त भगवान शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ की प्रतिमाओं का सहस्राब्दि महामस्तकाभिषेक महोत्सव सम्पन्न हुआ। इनके अतिरिकत खंडेला में ४ से १० मार्च तक पंचकल्याणक; ढकुआखाना, लखीमपुर (असम) में १० से १४ मार्च तक भगवान पार्श्वनाथ जिनबिम्ब पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव और विश्व शांति महायज्ञ तथा कुलचारम में १० से १६ मार्च तक पंचकल्याणक मना।

## सिद्धान्त ग्रन्थ–वाचना और विद्वत् संगोष्ठी

गांधीनगर, सरधना (मेरठ) में २८–३० दिसम्बर, २००२ को एक त्रिदिवसीय विद्वत् संगोष्ठी सम्पन्न हुई जिसमें **कषायपाहुड, जयधवला** और **सारसमुच्चय** शास्त्र की वाचना हुई तथा (१) श्रमण एवं श्रावक के जीवन में जैन सिद्धान्त ग्रन्थों की उपयोगिता, (२) श्रमण एवं श्रावक परम्परा में बढ़ते शिथिलाचार को रोकने के उपाय और (३) समाज में जैन श्रमणों की आवश्यकता क्यों एवं उनका सदुपयोग कैसे करें, इन विषयों पर समागत विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किये।

## छत्तीसगढ़ में जैन समाज को अल्संख्यक के रूप में मान्यता

छत्तीसगढ़ राज्य सरकार ने अपनी अधिसूचना क्रमांक एफ/५८८२/२६१४/आजावि./२००२, दिनांक २४ दिसम्बर, २००२ द्वारा छत्तीसगढ़ के मूल निवासी जैन समुदाय को, छत्तीसगढ़ राज्य अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम, १९९९ के प्रयोजन के लिये, अल्पसंख्यक समुदाय के रूप में अधिसूचित कर दिया है।

## डाक विभाग द्वारा एक विशेष आवरण व डाक मोहर

११ फरवरी को कोलकाता में भारतीय डाक विभाग द्वारा जैन धर्म, दर्शन, साहित्य एवं इतिहास के लब्धप्रतिष्ठ विद्वान साहित्य वाचस्पति भंवरलाल नाहटा की प्रथम पुण्यतिथि पर विशेष डाक आवरण और डाक मोहर जारी की गई।

## सौर ऊर्जा से सक्रिय जीवन जीने का अद्भुत प्रयोग

१७ मार्च के दैनिक जागरण (लखनऊ) में प्रकाशित समाचार के अनुसार ६६ वर्षीय हीरा रतन मानेक जैन एक ऐसे व्यक्ति हैं जो बीते आठ साल से बगैर कुछ खाये केवल चाय, काफी, मट्ठा, पानी और सौर ऊर्जा के बल पर सक्रिय जीवन

जी रहे हैं। सौर ऊर्जा उनके शरीर की कोशिकाओं को इस कदर संतृप्त कर चुकी है कि उन्हें बीमार पड़े अरसा हो गया। उन्हें न तो गुस्सा आता है और न वह तनाव में आते हैं । सूर्य की साधना से उनके शरीर ने भोजन त्यागना शुरू कर दिया और भूख खुद व. खुद खत्म होने लगी। वैज्ञानिकों का मानना है कि उनका मस्तिष्क और शरीर आम लोगों की तुलना में अधिक शक्तिशाली है। नासा उनकी क्षमता पर अनुसंधान कर रहा है और उसने उनके नाम पर 'एच.आर.एम. प्रोजेक्ट' भी शुरु कर दिया है। श्री मानेक सौर ऊर्जा ग्रहण करने के फायदे हर किसी तक पहुंचाने के लिये दुनिया भर में भ्रमण कर रहे हैं।

## आचार्य नगराज सभागार का उद्घाटन और आ. नगराज के ग्रन्थ का लोकार्पण

कोलकाता में भवानीपुर में 'महेन्द्र मुनि स्मृति भवन' के चतुर्थ तल पर बसन्त पंचमी पर्व पर उपाचार्य श्री मानमल जी द्वारा 'आचार्य नगराज सभागार' का उद्घाटन किया गया। और १५ फरवरी को नई दिल्ली में दिल्ली की मुख्यमंत्री श्रीमती शीला दीक्षित ने आचार्य नगराज के ग्रन्थ "आगम एण्ड त्रिपिटकः ए कम्पेरेटिव स्टडी ऑफ लार्ड महावीर एण्ड बुद्ध' खण्ड–दो का लोकार्पण किया।

## उत्तर प्रदेश में भी जैन समुदाय अल्पसंख्यक घोषित

२७ मार्च, २००३ को हुई मंत्रिमंडल की बैठक में लिये गये निर्णयानुसार राज्य सरकार ने उत्तर प्रदेश में जैन समुदाय को अल्पसंख्यक घोषित कर दिया है क्योंकि जैन धर्म के २४ में से १८ तीर्थंकरों का जन्म इसी प्रदेश में हुआ है, यहाँ पर जैन मंदिर और मूर्तियां जगह–जगह विद्यमान हैं और सन् १९९५ से इस समुदाय को अल्पसंख्यक घोषित किये जाने की मांग होती रही है। अल्पसंख्यक आयोग अधिनियम १९९४ के तहत अभी तक केवल मुस्लिम, सिख, बौद्ध, ईसाई और पारसी ये पांच अल्पसंख्यक सूची में थे। अब जैन धर्मानुयायियों को मिलाकर यह संख्या छह हो गई है।

# क्षणिकाएं

— श्री. रमा कान्त जैन

मात्र मुनि–भक्ति बना है धर्म हमारा
उनके वचनों पर श्रद्धान रखना धर्म हमारा
वे जो भी करें, सब ठीक है,
उनके आचार पर पर्दा डालना धर्म हमारा।।

** ** **

लाख बुरा आये जमाना
हर कोई बुरा नहीं होता।
भले तो भले हैं ही,
क्या बुरे लोगों से भला नहीं होता?

** ** **

बुराइयों से कहाँ तक लड़ें हम
अच्छाइयां सिर उठाये हैं उन्हीं के दम।
यदि संसार में बुरा न हो कोई,
अच्छों को फिर पूछेगा क्यों कोई?

** ** **

साधु–सन्त भी हमारी तरह इन्सान होते हैं बेचारे
राग–द्वेष आदि मानवीय गुणों से ओतप्रोत होते बेचारे
जीविका का कोई सुगम साधन खोजते–खोजते कुछ यहाँ,
इस परिधान–परिवेश को भी अपना लेते हैं बेचारे।।

** ** **

# प्रवेश सूचना

(१) भोगीलाल लहेरचन्द इन्स्टीट्यूट ऑफ इन्डॉलॉजी, २० वां किलोमीटर, जी. टी. करनाल रोड, पो. अलीपुर, दिल्ली–११००३६ (भारत) के निदेशक प्रो० विमलप्रकाश जैन ने सूचित किया है कि इस वर्ष २५ मई से १५ जून, २००३ तक संस्थान में **'प्राकृत भाषा व साहित्य'** में प्रशिक्षण दिया जायगा। प्रवेश के इच्छुक प्रतिभागी अपनी शैक्षणिक उपलब्धियों के सम्बन्ध में सूचना देते हुए **१५ अप्रैल, २००३ तक** आवेदन करें।

(२) डॉ. शीतलचंद जैन, निदेशक श्री दिगम्बर जैन श्रमण संस्कृति संस्थान, सांगानेर (जयपुर) ने सूचित किया है कि संस्थान का सातवां शैक्षणिक सत्र ७ जुलाई, २००३ से प्रारंभ होगा। धार्मिक अध्ययन सहित कुल पांच वर्ष के पाठ्यक्रम में दो वर्षीय उपाध्याय परीक्षा (सीनियर हायर सेकेण्डरी के समकक्ष) माध्यमिक शिक्षा बोर्ड अजमेर से एवं त्रिवर्षीय शास्त्री स्नातक परीक्षा (बी.ए. के समकक्ष) राजस्थान संस्कृत विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है जो सरकार द्वारा आई.ए.एस. और आर.ए.एस. जैसी किसी भी सर्वमान्य प्रतियोगिता परीक्षा में सम्मिलित होने के लिये मान्य है।

छात्रों को आवास, भोजन व पुस्तकादि की निःशुल्क व्यवस्था के साथ खेलकूद के लिये विशाल प्रांगण, कम्प्यूटर शिक्षा एवं अंग्रेजी भाषा की प्रवीणता के लिये प्रशिक्षित शिक्षकों की व्यवस्था, प्रतियोगी परीक्षाओं के लिये विशेष दिशा निर्देश की भी सुविधा उपलब्ध है। इच्छुक छात्रों को विधि विधान, वास्तु विज्ञान एवं ज्योतिष का भी प्रशिक्षण दिया जाता है।

जिन छात्रों ने १०वीं की परीक्षा (अंग्रेजी सहित) दी है अथवा उत्तीर्ण कर ली है तथा जो प्रवेश के इच्छुक हैं वे **दिनांक २२ मई से २६ मई २००३ तक** उक्त संस्थान में चयन हेतु शिविर में उपस्थित होवें। तत्पश्चात् चयनित छात्रों को ही प्रवेश मिल सकेगा।

(३) दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीर जी द्वारा संचालित अपभ्रंश साहित्य अकादमी, दिगम्बर जैन नसियाँ भट्टारकजी, सवाई रामसिंह रोड, जयपुर–३०२००४ के संयोजक डॉ. कमलचन्द सोगाणी ने सूचित किया है कि **'पत्राकार प्राकृत सर्टिफिकेट पाठ्यक्रम'** का आगामी सत्र १ जुलाई से प्रारम्भ होगा। नियमावली एवं आवेदन पत्र **१५ अप्रैल तक** अकादमी कार्यालय से प्राप्त होंगे। आवेदन पहुँचने की **अन्तिम तिथि १५ मई, २००३ है।**

# साहित्य सत्कार

(१) **हस्तिनापुराख्यान–तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुरः** ले. श्री रामजीत जैन एडवोकेट, टक्साल गली दानाओली, ग्वालियर– ४७४००१; प्र. जैन समाज; प्राप्ति स्थान–भावना अगरबत्ती कं., निम्बालकर की गोठ नं. २, ग्वालियर; प्र. वर्ष–२००२; पृ. ६८; मूल्य–रु. २५/–

तीन चक्रवर्ती तीर्थंकरों के चार–चार कल्याणकों की पवित्र भूमि हस्तिनापुर उत्तर भारत के सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं विकसित जैन तीर्थक्षेत्रों में है। आदि तीर्थंकर भगवान ऋषभदेव के दीक्षोपरान्त प्रथम पारणा से दान तीर्थ की स्थापना के रूप में विख्यात हुआ यह जैनों का अयोध्या के अतिरिक्त सर्वाधिक प्राचीन तीर्थक्षेत्र भी है। भगवान अरहनाथ के धर्म–शासन काल में महाराज पद्मरथ के समय में कतिपय धर्म द्वेषियों द्वारा ७०० मुनियों के संघ पर किए गए भारी उपसर्ग का विष्णु कुमार मुनि द्वारा निवारण किए जाने के कारण रक्षाबंधन पर्व का प्रारंभ भी हस्तिनापुर से ही माना जाता है। सुप्रसिद्ध कुरुवंशियों की राजनगरी यह महाभारत काल के बाद कई पीढ़ियों तक रही। पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा कतिपय प्राचीन टीलों के उत्खनन में प्राप्त पुरावशेषों को पुरातत्वविदों ने १२००–१३०० ई. पू. का आंका है। उनसे इस महानगर की प्राचीन काल की उन्नत नागरिक सभ्यता का कुछ दिग्दर्शन होता है।

समीक्ष्य कृति के विद्वान लेखक वकील श्री रामजीत जी ने दिगम्बर जैन पुराण साहित्य के आधार पर संक्षेप में इसके प्राचीन गौरवपूर्ण इतिहास का दिग्दर्शन कराते हुए क्षेत्र के धर्मायतनों, धर्मशालाओं आदि का वर्णन देते हुए अंत में पं. जवाहरलाल कृत क्षेत्र पूजा के साथ पुस्तक समाप्त की है। प्रारंभ में मुनि श्री पुलकसागर महाराज के आशीर्वाद सहित इस कृति के प्रकाशन में सहयोगी हुए दातारों के चित्र भी प्रकाशित किए गए हैं। बंधुवर रामजीत जी ने कई तीर्थक्षेत्रों तथा जैन जातियों के इतिहास लिखकर अपनी लेखनी को धन्य किया है। पुस्तक का नाम तीर्थक्षेत्र हस्तिनापुर है तो अच्छा होता यदि क्षेत्र पर स्थित श्वेताम्बर धर्मायतनों का वर्णन भी पुस्तक में समाहित किया जाता जिनमें कई विशेष दर्शनीय हैं। पुस्तक संग्रहणीय है।

(२) **तीर्थंकर महावीरः** ले. प्रो. (डॉ.) प्रेमसुमन जैन; प्र. महावीर जैन परिषद, उदयपुर; प्राप्ति स्थान–श्री दि. जैन साहित्य विक्रय केन्द्र उदासीन आश्रम, अशोक नगर रोड, उदयपुर; प्र. वर्ष–२००२; पृ. ८०; मूल्य– रु. ३०/–

समीक्ष्य कृति के लेखक जैन जगत के जाने माने विद्वान प्रो. प्रेम सुमन जैन हैं। उन्होंने महावीर जैन परिषद उदयपुर के अनुरोध पर भगवान महावीर स्वामी के २६००वें जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष के सुअवसर पर इस पुस्तिका का निर्माण सामान्य जन को संक्षेप में भगवान महावीर के जीवन दर्शन से परिचित कराने के लिए किया है। इस पुस्तिका में भगवान महावीर के जीवन दर्शन को इतिहास और परम्परा के साथ आधुनिक परिप्रेक्ष्य में दिया गया है। विद्वान लेखक ने भी भगवान महावीर की जन्म स्थली कुण्डलपुर को वैशाली के पुरावशेषों (बसाढ़) के निकट वासोकुण्ड से ही चिन्हित किया है जो इतिहास–भूगोल और पुरातत्व से सम्मत है। डाक्टर साहब ने गागर में सागर भरा है। इस जन्म कल्याणक महोत्सव वर्ष पर भगवान महावीर पर अनेक छोटे–बड़े ग्रंथों का प्रकाशन हुआ। इस पुस्तिका का उनमें अपना अनूठा महत्व है। पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है। आवरण पृष्ठ को भारतीय संविधान की सुलिखित प्रति में अंकित भगवान की ध्यानस्थ मुद्रा के चित्र से अलंकृत किया गया है।

**(३) सम्यग्दर्शनः** ले. आचार्य श्री विरागसागर जी, सम्पादक– डॉ. सुदर्शनलाल जैन; प्र. श्री सम्यग्ज्ञान दिगम्बर जैन विराग विद्यापीठ, बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र.); प्र. वर्ष–२००२; पृ. १२६; मूल्य– रु. २५/–

जैन धर्म में सम्यग्दर्शन का सर्वोपरि महत्व है। यह मोक्ष मार्ग का प्रथम सोपान है। आचार्य श्री के शब्दों में यह मोक्ष मार्ग के गणित का आद्य मिताक्षर है। इसके बिना ज्ञान, व्रत, चारित्र निरर्थक होते हैं और उनसे मोक्ष मार्ग में कोई प्रगति नहीं होती। सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्र का आधार स्तम्भ हैं। इसके बिना न तो मुनिधर्म संभव है और न गृहस्थ धर्म। सम्यग्दर्शन का विषय जितना सुगम है उतना ही जटिल भी। सुगम इसलिए कि एक सम्यक् आस्थावान (जिनोपदिष्ट तत्वों में यथार्थ श्रद्धान रखने वाला) अनपढ़ पतित मनुष्य तो क्या, पशु–पक्षी, देव व नारकी भी उतरोत्तर आध्यत्मिक विकास कर मोक्ष प्राप्त कर सकता है और जटिल इसलिए कि इसकी पूर्ण महिमा को चार ज्ञान के धारी गणधर भी नहीं गा सकते हैं। पूज्य आचार्य श्री ने समीक्ष्य कृति में इस विषय पर आगमोक्त विवेचन प्रस्तुत किया है। विद्वान सम्पादक जी ने अपनी १६ पृष्ठीय प्रस्तावना में विषय को और स्पष्ट करते हुए सम्यग्दर्शन विषयक कतिपय प्रश्नों का समाधान भी प्रस्तुत किया है, जैसे कि कुछ यह मानते हैं कि शासन देवी देवताओं व लोकपालों की पूजा–भक्ति करना तो साधर्मी वात्सल्य भाव रूप सम्यक्त्व का अंग है, विद्वान सम्पादक जी का स्पष्ट उत्तर है नहीं। जैन शासन

में इन्हें मिथ्या दृष्टि माना गया है तथा मिथ्यादृष्टि की पूजा तथा उससे की गई याचना तो संसार परिभ्रमण को ही बढ़ाने वाली है। पुस्तक संग्रहणीय और स्वाध्याय योग्य है।

**(४) महावीर की जन्म भूमि–कुण्डपुर** : ले. श्री राजमल जैन; प्र. भगवान महावीर स्मारक समिति, झेलम– पाटिलपुत्र पथ, राजेन्द्र नगर, पटना –१६; प्र. वर्ष २००३; पृ. ६६; मूल्य– चिन्तन और सम्यक् निर्णय।

प्रज्ञा श्रमणी आर्यिका चन्दनामती जी के विरोधी तर्कों का सशक्त उत्तर देते हुए विद्वान लेखक ने समीक्ष्य आलेख में प्रतिपादित किया है कि प्राचीनतम उल्लेखों के अनुसार भगवान महावीर की जन्म भूमि का नाम कुण्डपुर था न कि कुण्डलपुर नगर। कुण्डपुर की पहिचान उन्होंने गंगा के उत्तर क्षेत्र में वैशाली जिले के बसाढ़ ग्राम से २ कि.मी. की दूरी पर स्थित वासो कुण्ड से ही की है। विद्वान लेखक के तर्क अकाट्य हैं। नालन्दा जिलान्तर्गत कुण्डलपुर को भगवान महावीर की सही जन्म भूमि मानने वालों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिये। पुस्तक संग्रहणीय है।

**– अजित प्रसाद जैन**

**(५) राह अपनी तरफः** ले. दर्शन लाड़; प्र. स्वाति अकादमी, मेघ प्रकाशन, २३६, दरीबाकलां, दिल्ली– ११०००६; प्र. वर्ष २००३; पृ. १६०; मूल्य रु. १५०/–

श्री दर्शन लाड़ की कृति 'राह अपनी तरफ' एक उपन्यास है। लेखक की फिल्मों में पटकथा–लेखन की शैली से प्रभावित एक त्रिकोणीय प्रेम कथानक को अनावृत करने के साथ ही यह अध्यात्मिक चिंतन को भी सहज रूप में प्रस्तुत करता है। दीप जी के माध्यमे से जैन दर्शन के भेद–विज्ञान अर्थात् आत्मा या चैतन्य और शरीर व समस्त सांसारिक बंधनों–सम्बन्धों की वैधता को सरल भाषा में और सहज शैली में प्रस्तुत किया गया है, जिसका सारांश है–

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते<br>
चित्स्वभावाय भावाय सर्व भावान्तरच्छिदे।

कथा अनंत, नूतन और रामेश्वर के गिर्द घूमती है। एक वयोवृद्ध चिन्तक दीप जी जो स्वयं पत्नी और पुत्र को खो चुके हैं और भेद–विज्ञान को आत्मसात कर स्वानन्द की अनुभूति कर चुके हैं, रामेश्वर की मृत्यु से विह्वल उसके पिता को मुक्ति–बोध कराते हैं और अनंत को, जो अपने मित्र के वियोग से भटक रहा था, कर्तव्य–बोध कराते हैं। अन्त में अनंत समझ लेता है कि जीवन का यथार्थ है राह अपनी तरफ अर्थात् संसार के सारे कर्तव्य निभाते हुये भी उस मोह, क्षोभ और

कलुषता से दूर रहना जो आज की मानवता को स्वार्थ के संकीर्ण पथ पर भटका रही है।

श्री दर्शन लाड़ का यह उपन्यास सहज पठनीय भी है और चिन्तन–प्रेरक भी है।

(६) **तंत्र विद्या का यथार्थ:** ले. पं. दुर्गाप्रसाद शुक्ला; प्र. मेघ प्रकाशन, २३९, दरीबा कलां, दिल्ली–११०००६; प्र. वर्ष २००३; पृ. १७६; मूल्य रु. २००/–

पुस्तक का उद्देश्य आम पाठक को तंत्र के उद्देश्य, उसके उद्भव और विकास अर्थात् इतिहास, सिद्धांतों एवं साधना पद्धतियों व विभिन्न तांत्रिक सम्प्रदायों की ठोस जानकारी देना, सूचित किया गया है। तंत्र विद्या के विषय में जिज्ञासा प्रायः होती है। 'कादम्बनी' मासिक में कई विशेषांक इस विषय पर प्रकाशित हुए थे और इस पुस्तक के लेखक उनके संपादन से जुड़े थे। तन्त्र विद्या के संबंध में परिचयात्मक जानकारी के लिए पुस्तक उपयोगी है।

(7) **JAINA AND HINDU LOGIC - A COMPARATIVE** STUDY, by Dr. Pradyumna Kumar Jain; pub. by Research Books, B-5/263, Yamuna Vihar, Delhi-110053/Megh Prakashan, 239, Dariba Kalan, Delhi-110006; Ist ed. 2002; pp. 216; Rs. 400/-

Dr. Pardyumna Kumar Jain is a noted scholar of Indian Philosophy. His particular interest is in Logic (Nyaya), with special reference to Jain Nyaya. The instant study has 7 chapters, besides Introduction, Bibliography and Index, and relevant references. A serious subject has been made intelligible by prefixing suitable titles to the discussion, as also appending conclusion.

The Reason (Logic, Nyaya) is the main striving force of life, thinking being the essential nature of living beings. All the three streams of Indian philosophy, namely, the Vedic, Jain and Buddhist, recognise the enquiring spirit and logical reasoning as the basis of knowledge. Dr. Jain has objectively surmised that 'every system in India evaluated the techniques of reasoning in accordance with its own philosophical and religious postulates, so much so sometimes it is on the risk of dogmatism in the logical discussions' He has taken care to point out this weakness in the systems.

In the Introduction Dr. Jain has briefly indicated the Ethico- Scientific character of the Indian systems of logic. Then he has dwelt with historical development, evaluation of logic in Jaina and Nyaya systems of philosophy, pramana and its logial implications, perceptual

knowledge and its knowables, indirect organ of knowledge, and logical forms of inference. His conclusion- 'Upto the 9th century A. D. logical growth of all the schools of thought had become mature, and after that we see a very little progress in them. Upto 12th century A. D. Buddhist logicians became almost extinct, and the controversy thereby ceased to a large extent. Vedic tradition had a little polemic against the compromising nature of the Jainas'. And, 'In the foreign Muslim period after Akbar the whole history of Indian logic was upset and no sign of its further rise could be observed'- is worth noting.

Dr. Jain has done a commendable job in providing a useful work for comprehending and appreciating the systems of Indian logic vis-a-vis the Jaina thought on Nyaya.

**(8) HISTORY OF JAINISM** (WITH SPECIAL REFERENCE TO MATHURA), by Dr. Virendra Kumar Sharma; pub. by D. K. Printworld (P.) Ltd., 'Shri Kunj', F-52, Bali Nagar, New Delhi- 110015; Ist ed. 2001; pp. xx+280, plates xxi; Rs. 850/-

The present study has two parts. Chapters 1 to 4 respecively deal with Introduction to Jainism, Jaina Tirthamkaras and antiquity of Jainism, Parsvanatha and Vardhamana Mahavira, & Post-Mahavira period and the contribution of Jainism to Indian culture. Thereafter chapters 5 to 7 relate to Jainism as evident in Mathura, dealing with Jainism in Mathura (2nd century B. C. to 11th century A. D.), Jaina Art and Architecture at Mathura (2nd century B.C. to 11th century A.D.), and Jainism in Mathura (11th century A.D. to the present times).

The treatise runs into 243 pages. The beauty of diction is that nearly every sentence has a reference noted in the footnote. Thus it gives an impression of a documented compilation of information selected by the author to suit his narration. He has tried to be judicious, not relying on the Digambara or Svetambara tradition solely. Suggestion of Astapada, the abode from where Rsabha attained moksha, to be the Satrunjaya Hill in Gujarat, is an instance where he could have used discretion instead of simply dotting the quote.

Of the 24 Tirthamkaras, the 23rd and 24th are taken to be historical persons. The Svetambara tradition has been generally followed for the life of Parsvanatha and Mahavira since the reference material used is largely drawn from their literature.

The first 4 chapters cover the total range of the antiquity, historicity and provenance of Jainism on a broad canvas from the earliest times down to the present times, which may enable to get an introductory knowledge about Jainism in different parts of India.

The 3 chapters on Jainism in Mathura cover half the space. The archaeologicl excavations at the Kankali Tila during 1871-1888 yielded valuable material which has been useful in the study of the evolution of Jain iconography during 2nd century B.C. to 11th century A.D. It also established that Jainism was poular in Mathura in that period. The Jain Stupa at Kankali Tila was called 'deva-nirmita' (built by gods) in an inscription dated in the year 79 or 49 (A. D. 157 or 127) probably because it had existed for long. The same Stupa seems to have existed in 2nd century B.C. when Kharvavela worshipped it during his expedition to Mathura, as mentioned in his Hathigumpha Inscription. (ref. my book 'The Hathigumpha Inscription of Kharavela and the Bhabru Edict of Asoka' 2nd ed. 2000, D. K. Printworld, N.D.) The donative inscriptions indicate that in the early centuries of the Christian era, Jainism was popular with different sections of society including artizans and courtesans.

Dr. Sharma has dealt with the evolution and development of Jaina art and inconography, with reference to Mathura, in a systematic and exhaustive manner. He has cogently surmised that during the Muslim rule from 13th century to 18th century A.D., it was dark period for Jainism in Mathura, and that Jainism srarted gaining prominence in Mathura during the 19th century and made considerable progress in the 20th century.

The book carries Foreword by Prof. R. C. Sharma who has been himself associated with the study of Jain art in Mathura; he has given a candid evaluation of the work. The study is supplemented by Transliteration Chart, 21 illustrations on B/W plates, Bibliography and Index. The lay-out and get-up are fine, for which the publishers deserve appreciation. The author Dr. V. K. Sharma deserves congratulation for making a useful contribution to Jainological Studies through his painstaking effort in producing this study.

**-Dr. Shashi Kant**

**(६) लखनऊ संग्रहालय की जैन प्रतिमाएं (एक प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन):** लेखक– डॉ. शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी; प्र. श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन (तीर्थ संरक्षिणी) महासभा, श्री नन्दीश्वर फ्लोर मिल्स कम्पाउण्ड, मिल रोड, ऐशबाग, लखनऊ– २२६००४; प्रथम संस्करण २००२; पृ. १२+११६+६४ चित्र फलक; मूल्य रु. १००/–

संसार में कदाचित् ही कोई धर्म हो जो अपने मानने वालों को सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की त्रिवेणी में अवगाहन करने से रोकना चाहे। सभी धर्मों का ध्येय मानव का नैतिक, लौकिक और पारलौकिक उन्नयन है। किसी भी धर्म के अनुयायी अपनी धार्मिक मान्यताओं, आस्थाओं, भावनाओं और अपने आचरण को दूसरों के समक्ष जिस रूप में अभिव्यक्त करते हैं वह रूप ही उनकी पहचान या यों कहिये उनकी संस्कृति के रूप में जाना जाता है। किसी भी धर्म के अनुयायियों द्वारा रचित साहित्य, पल्लवित संगीत और पुष्पित कला उनकी सुरुचि और कल्पना के परिचायक होते हैं। प्रायः सभी व्यक्तियों को अपनी सांस्कृतिक धरोहर पर गर्व होता है। उसकी प्राचीनता और समृद्धि के बारे में जानने की जिज्ञासा बनी रहती है और उससे प्रेरणा ले आगे बढ़ने की कामना भी। जैन धर्म, संस्कृति और उसके अनुयायी इनके अपवाद कैसे हो सकते हैं? भारत में जन्में धर्मों में ऋषभदेव से वर्द्धमान महावीर (ईस्वी पूर्व ५६६–५२७) पर्यन्त २४ तीर्थंकरों द्वारा प्रणीत जैन धर्म वैदिक धर्म, शैव धर्म, वैष्णव धर्म और शाक्त धर्म से कम प्राचीन नहीं है और तदनुसार उसकी संस्कृति और साहित्य एवं कला भी। उन्नीसवीं शताब्दी में मथुरा के कंकाली टीले पर भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण विभाग द्वारा कराये गये उत्खनन में भूगर्भ में दबी अनेक जिनमूर्तियां और कलाकृतियां अथवा अवशेष प्राप्त हुए थे। उस सामग्री का बहुभाग राज्य संग्रहालय लखनऊ को प्राप्त हुआ था। तदनन्तर प्रदेश के अन्य स्थानों से भी प्राचीन जैन कला कृतियां उक्त संग्रहालय को प्राप्त होती रहीं जिनमें से कुछ को संग्रहालय की जैन वीथिका में प्रदर्शित किया जा रहा है। इस संग्रहालय के पुरातत्त्व अनुभाग से सुदीर्घकाल तक सक्रिय रूप से सम्बद्ध रहे भाई शैलेन्द्र कुमार रस्तोगी ने इस संग्रहालय की जैन प्रतिमाओं का प्रतिमा–शास्त्रीय अध्ययन कर अपना शोध–प्रबन्ध लखनऊ विश्वविद्यालय को प्रस्तुत किया था और पी.–एच. डी. उपाधि प्राप्त की थी। उक्त शोध–प्रबन्ध का प्रकाशन अब विवेच्य कृति के रूप में हुआ है।

प्रस्तुत कृति ११ आलोकों (अध्यायों) में विभाजित है। प्रथम आलोक में "विषय प्रवेश" के अन्तर्गत जैन धर्म और जैन मूर्तियों का उद्भव व विकास पर प्रकाश डाला गया है। साथ ही दिगम्बर–श्वेताम्बर सम्प्रदायों की मूर्तियों के भेद

स्पष्ट करते हुए जिनमूर्तियों के संबंध में सामान्यतः विंहगम दृष्टि डालने के साथ–साथ संग्रहालय में संग्रहीत जैन मूर्तियों की विशिष्टताओं पर विशेष प्रकाश डाला गया है। आलोक–२ में जैन प्रतीकों, आलोक–३ में आयागपट्टों और आलोक–४ में कतिपय विशिष्ट कलाकृतियों से सम्बन्धित जैन कथानकों का विवेचन किया गया है। आलोक–५ में प्रत्येक तीर्थंकर का संक्षिप्त परिचय देते हुए, उनसे सम्बन्धित मूर्तियों की देश एवं विदेश के संग्रहालयों में स्थिति के सापेक्ष लखनऊ संग्रहालय की प्रतिमाओं का प्रतिमा शास्त्रीय अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। आलोक–६ में सर्वतोभद्र प्रतिमाओं, आलोक–७ में द्वितीर्थी, त्रितीर्थी एवं पंचतीर्थी प्रतिमाओं, आलोक–८ में चतुर्विंशतिका एवं अष्टोत्तर जिनपटट् प्रतिमाओं और आलोक–६ में यक्ष–यक्षी और क्षेत्रपाल–की प्रतिमाओं का विवेचन हुआ है। आलोक–१० में जहाँ आर्यावती, लक्ष्मी, सरस्वती, सिद्ध, सुपर्ण और विद्याधर की मूर्तियों पर प्रकाश डाला गया है वहीं आलोक–११ में संग्रहालय में उपलब्ध शेष जैन शिल्पांकनों का वर्णन किया गया है। प्रस्तुत विवेचन में जहाँ मूर्तियों आदि पर उत्कीर्ण लेखों में उनका समय अंकित है उसका उल्लेख करते हुए उनकी प्राचीनता पर भी प्रकाश डाला गया है।

इस विवेचन के पश्चात 'परिशिष्ट' में संग्रहालय में संग्रहीत अनभिज्ञेय अर्थात् (परिचय या पहचान चिन्ह शेष नहीं है जिनका) ऐसी ३३ तिथियुक्त और ३७ तिथिरहित जिन मूर्तियों की सूची दी गई है तथा तीन तालिकाओं में तीर्थंकरों के नाम, जन्मस्थान, लांछन, यक्ष–यक्षी और जननी–जनक के नाम दिये गये हैं। साथ ही जैन कलाकृतियों के इस विवेचन को जीवन्त बनाने हेतु ६४ चित्र फलक भी लगाये गये। यह मात्र संयोग है या हमारा दुर्भाग्य कि पुस्तक की जो प्रति हमें उपलब्ध कराई गई व अन्यत्र भी वितरित हुई उसमें चित्र फलक ३ व ४ तथा चित्र फलक २३,२४,२५ किसी के द्वारा फाड़े गये लगे। ऐसा क्यों किया गया, यह तो प्रकाशक ही बता सकते हैं। हमारे द्वारा निवेदन करने पर भी पूर्ण प्रति हमें अभी तक उपलब्ध नहीं कराई गई। अपने दीर्घकालीन विशद एवं गहन अध्ययन के उपरान्त डॉ. शैलेन्द्र रस्तोगी द्वारा प्रस्तुत राज्य संग्रहालय लखनऊ में उपलब्ध जैन मूर्तियों एवं कलाकृतियों का यह प्रतिमा–शास्त्रीय अध्ययन न केवल आस्थावान जैन धर्मानुयायियों के लिये रुचिकर होगा, अपितु जैन प्रतिमा–विज्ञान के अध्येताओं के लिये भी ज्ञानप्रद सिद्ध होगा, यह निस्सन्देह है।

**(१०) भारतीय दिगम्बर जैन अभिलेख और तीर्थ परिचय–मध्यप्रदेशः १३ वीं शती तक :** सम्पादक – लेखक– डॉ. कस्तूर चन्द्र जैन 'सुमन'; प्र. श्री दिगम्बर जैन साहित्य संस्कृति संरक्षण समिति, डी–३०२ विवेक बिहार, दिल्ली–११००६५/

जैन साहित्य– विक्रय केन्द्र, जैन विद्या संस्थान, श्री महावीर जी, जिला– करौली (राजस्थान)– ३२२२२०; प्रथमावृत्ति २००१; पृ. ३१२; सचित्र; मूल्य रु०–१२०/–

प्रस्तुत कृति में लब्धप्रतिष्ठ विद्वान डॉ. कस्तूरचंद जैन 'सुमन' ने मध्य प्रदेश में ५३ स्थानों पर प्राप्त लगभग ३७५ ईस्वी से १३ वी शती ईस्वी पर्यन्त के ३०३ जैन अभिलेखों को सम्पादित कर उनका भावार्थ उनके ऐतिहासिक मूल्यांकन के साथ दिया है।

इस अभिलेख संग्रह में संकलित अनेक अभिलेख अभी तक अल्पज्ञात या अज्ञात रहे हैं और अधिकतर अल्पज्ञात स्थलों पर प्राप्त हुए हैं। पाठान्तरों के आधार पर अभिलेखों के मूल पाठ का सम्पादन पाठक समझ सकें इस हेतु पाद–टिप्पणी दी गई है और अभिलेखों में प्रयुक्त विशिष्ट शब्दों की व्याख्या देकर भावार्थ को बोधगम्य बनाया गया है। इन अभिलेखों में जिन तीर्थों का उल्लेख आया है अथवा जिन तीर्थों से इनका सम्बन्ध है उनका परिचय भी विद्वान लेखक ने सुलभ कराया है। साथ ही इनके आधार पर उस क्षेत्र की तत्कालीन सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक स्थिति का विवेचन किया हैं। इन अभिलेखों से जैन धर्मानुयायी २४ जातियों का पता चलता है।

जैन पुरातत्व और जैन इतिहास के अध्येताओं के लिये प्रस्तुत कृति निश्चित ही उपादेय है। इसके लिये लेखक और प्रकाशक दोनों साधुवाद के पात्र हैं !

**(११) विमलायन (महाकाव्य)** : रचयिता– श्री वीरेन्द्र प्रसाद जैन, सम्पादक: अहिंसा वाणी; प्र. महावीर प्रकाशन, अलीगंज (एटा); प्रथम संस्करण २००२ ई.; पृ. १३८+१०; मूल्य रु. ५१/–

विगत पाँच दशकों से स्वान्तः सुखाय और बहुजन हिताय साहित्य साधना में रत, अनेक कृतियों के प्रणेता श्री वीरेन्द्र प्रसाद जैन की लेखनी से प्रसूत विवेच्य महाकाव्य **विमलायन** में तेरहवें तीर्थंकर विमलनाथ के जीवन की घटनाओं, विशेषकर उनके गर्भ, जन्म, दीक्षा, केवलज्ञान तथा निर्वाण इन पाँच कल्याणकों का सांगोपांग वर्णन हुआ है। काव्य सौष्ठव को बनाये रखते हुए इसमें यथास्थान जैन तत्वज्ञान और दर्शन को समाविष्ट किया गया है। काव्य की कथा–वस्तु कवि ने पुष्पदंत के **'महापुराण'** और गुणभद्र के **'उत्तर पुराण'** से तथा 'अहिंसा वाणी' के १९६० में प्रकाशित 'त्रय तीर्थंकर भ. विमल, भ. अनन्त, भ. धर्मनाथ विशेषांक' से ग्रहण की बताई है। महाकाव्य के लिये निर्धारित लक्षणों की कसौटी पर खरी इस कृति में ज्ञान और भक्ति की गहराई और काव्याभिव्यक्ति की कलात्मक ऊँचाई का दर्शन एक साथ होता है। **'तीर्थंकर भगवान महावीर'**,**'पार्श्व**

प्रभाकर', 'आदि आदित्य' के उपरान्त अक्टूबर १९९७ में पूर्ण हुआ **'विमलायन'** भाई वीरेन्द्र जी का चतुर्थ महाकाव्य है जो अब प्रकाशित हुआ है। प्रसादगुणयुत सरल–सुबोध भाषा में प्रणीत यह महाकाव्य भक्त पाठकों को आत्मिक आनन्द प्रदान करेगा। इसके प्रणयन हेतु कवि को साधुवाद !

**(१२) जिन–वचनः** संकलन कर्ता एवं अनुवादक– डॉ. रमणलाल सी.शाह; प्र. श्री बम्बई जैन युवक संघ, ३८५, सरदार वी.पी.रोड, मुम्बई –४००००४; पुनर्मुद्रण अगस्त १९९५; पृ. २००; मूल्य रु०– १०० / –

**दसवैकालिक, उत्तराध्ययन, सूत्रकृतांग, आचारांग** और **प्रश्न व्याकरण** इन पाँच अर्ध–मागधी भाषा में निबद्ध श्वेताम्बर आगम ग्रन्थों में निहित जिनवाणी में से २०० सूक्तियों का विषयवार संकलन कर अनका अंग्रेजी, हिन्दी और गुजराती भाषा में सरल–सुबोध अनुवाद प्रस्तुत करने का श्लाघनीय कार्य डॉ. शाह ने किया है। भगवान महावीर की शिक्षाओं को समझने में सामान्य पाठकों के लिये यह कृति सहायक होगी।

**(१३) समय के स्वर (काव्य संकलन) :** रचयिता डॉ. परमानंद जड़िया; प्र. मधुलिका प्रकाशन, १८६ / ५१, खत्री टोला, मशकगंज, लखनऊ–२२६०१८; प्रथमावृत्ति नवम्बर २००२ ई.; पृ.६२; मूल्य रु०–१०० / –

काव्य, खण्ड काव्य, महाकाव्य, ग़ज़ल, कथा, उपन्यास, नाटक और संस्मरण–साहित्य की इन सभी विधाओं में समान रूप से लेखनी चलाने में समर्थ, सरस्वती के वरदपुत्र डॉ. जड़िया का यह २८ वां काव्य संकलन है। वर्तमान युग की विसंगतियों से कवि–मन खिन्न है। उसका मानना है–

**"आस्था विश्वास के जब भग्न होते घर**
**गूंजते तब कर्ण कुहरों में समय के स्वर ।।"**

**'अभिव्यंजना'** और **'छन्द– छपाकर'** की भांति प्रस्तुत कृति में भी ठकुर–सोहाती में विश्वास न रखने वाले कवि ने छन्दों के माध्यम से सीधी–सादी भाषा में विभिन्न विसंगतियों को चित्रांकित करते हुए उन पर सशक्त प्रहार किया है और पाठकों को कुछ सोचने पर बाध्य किया है। आज की राजनीति पर चोट करते हुए कवि ने लिखा है–

**"सत्ता के गलियारे में है**
**माँग करेन्सी नोटों की**
**राजनीति बन गयी भिखारिन**
**नयन–विहीना वोटों की ।।"**

इस सशक्त कृति के प्रणयन हेतु डॉ. जड़िया साधुवाद के पात्र हैं।

**– रमा कान्त जैन**

# अभिनन्दन

**श्री धनकुमार जैन शास्त्री (जयपुर)** को उनके शोध–प्रबन्ध **"आचार्य कुन्दकुन्द के साहित्य में तत्वों का समीक्षात्मक अध्ययन"** पर राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर ने पी–एच.डी. (विद्यावारिधि) उपाधि प्रदान की।

**साध्वी सुभाषा जी म. (करनाल)** को उनके शोध–प्रबन्ध **"जैन दर्शन में रत्नत्रय : एक समीक्षात्मक अध्ययन"** पर कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय ने पी–एच.डी. उपाधि प्रदान की।

**समणी सम्बोध प्रज्ञा** को उनके शोध–प्रबन्ध **"अर्धमागधी आगमों में आत्म–तत्व की अवधारणा"** पर, **समणी मंगल प्रज्ञा** को उनके शोध–प्रबन्ध **'जैन आगमों के दार्शनिक चिन्तन का वैशिष्ट्य'** पर तथा **समणी अमित प्रज्ञा** को उनके शोध–प्रबन्ध **"उत्तराध्ययन सूत्र का शैली वैज्ञानिक अध्ययन"** पर जैन विश्व भारती, लाडनूं ने पी–एच.डी. उपाधि प्रदान की।

१८ दिसम्बर, २००२ को आगरा में **डॉ. डी. वीरेन्द्र हेगड़े** को **उपाध्याय ज्ञानसागर श्रुत संवर्द्धन पुरस्कार २००१** प्रदान किया गया।

६ जनवरी, २००३ को इंदौर में अ.भा. दिगम्बर जैन महिला संगठन द्वारा छतरपुर के **श्री तुषार कान्त विद्यार्थी,** उपपुलिस अधीक्षक, डबरा (ग्वालियर) को **'अमर शहीद गौतम जैन स्मृति वीरता पुरस्कार'** से सम्मानित किया गया और अदम्य साहस और उत्कृष्ट कर्तव्यनिष्ठा हेतु इस वर्ष राष्ट्रपति शौर्य पदक के लिये उन्हें चयनित किया गया।

**श्री वीरेन्द्र प्रसाद जैन**, सम्पादक 'अहिंसा वाणी', अलीगंज (एटा) को भक्ति काव्यों के प्रणयन के फलस्वरूप श्यामसुन्दर शास्त्री श्रुत प्रभावक न्यास, फिरोजाबाद द्वारा **वर्ष २००३ के महाकवि रइधू पुरस्कार** हेतु नामित किया गया।

इस वर्ष गणतंत्र दिवस पर हुई घोषणानुसार ३ अप्रैल को राष्ट्रपति द्वारा **डॉ. कांतिलाल हस्तीमल संचेती (जैन)** को चिकित्सा क्षेत्र में तथा **श्री सिद्धराज जी ढड्डा (जयपुर)** को सार्वजनिक कार्य में विशिष्ट योगदान हेतु **'पद्मभूषण'** और **कवि नेमीचंद जैन (दिल्ली)** को थियेटर क्षेत्र में व **श्री ओमप्रकाश जैन (दिल्ली)** को कला क्षेत्र में उनके योगदान के लिये **'पद्मश्री'** अलंकरण से सम्मानित किया गया।

सांसद **श्री दिलीपकुमार मनसुखलाल गांधी** को केन्द्रीय मंत्रिमंडल में जहाजरानी राज्यमंत्री बनाया गया।

**साहू रमेशचंद जैन** 'मास कम्यूनिकेशन' के मानद अध्यक्ष मनोनीत किये गये।

**डॉ. नीलम जैन** (प्रधान सम्पादिका 'जैन महिलादर्श') को उज्जैन में मध्यप्रदेश के संस्कृति मंत्री द्वारा रु. ५१,०००/– का **'प्रथम विदुषी विद्योत्तमा सम्मान'** प्रदान किया गया।

**प्रो. कल्याणमल लोढा** (कोलकाता) को उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान ने **'महात्मा गांधी पुरस्कार'** से सम्मानित करने की घोषणा की है।

**श्री सुमेरचंद जैन (जयपुर)** को प्लाईबोर्ड व्यवसाय में उल्लेखनीय सफलता हेतु नई दिल्ली में इण्डियन इकोनोमिक डेवलपमेन्ट एण्ड रिसर्च एसोसियेशन की ओर से **'भारतीय उद्योगरत्न'** पुरस्कार से सम्मानित किया गया।

१६ जनवरी को अहमदाबाद में साहित्यकार **रमणलाल चिमनलाल शाह** को **'समदर्श आचार्य हरिभद्रसूरि स्वर्ण–चन्द्रक'** प्रदान किया गया।

ग्वालियर की **डॉ. (श्रीमती) कृष्णा जैन** को अमेरिकन बायोग्रॉफिकल इंस्टीट्यूट द्वारा **'वूमेन ऑफ द इयर २००२'** से सम्मानित किया गया।

**डॉ. कुमारपाल देसाई** (अहमदाबाद) को २३ मार्च को मुम्बई में **'जैन गौरव'** अलंकरण से सम्मानित किया गया।

दि. जैन महासमिति ने (१) **बाबू सुकुमारचन्द जैन, मेरठ स्मृति महासमिति संगठन पुरस्कार–२००२ डॉ. एस. के. जैन (भिण्ड)** और **श्रीमती प्रिया प्रवीणकुमार शहा (मुम्बई)** को, (२) **श्री प्रकाशचन्द जैन लुहाड़िया, सासनी स्मृति महासमिति समाज सेवा पुरस्कार– २००२ श्री महावीर प्रसाद जैन काला (बूंदी)** को तथा (३) **बाबू महावीर प्रसाद जैन, हिसार स्मृति महासमिति शिक्षा पुरस्कार २००२ श्री बाहुबली पाण्ड्या (इन्दौर)** को प्रदान किये जाने की घोषणा की।

उपर्युक्त सभी सम्मानित महानुभावों का उनकी उपलब्धियों के लिये **शोधादर्श** परिवार अभिनन्दन करता है और उन्हें अपनी शुभकामना अर्पित करता है।

# शोक संवेदन

५ अक्तूबर, २००२ को अहमदाबाद में ६५ वर्षीय लब्धप्रतिष्ठ जैन विद्वान डॉ. के. आर. चन्द्र दिवंगत हो गये।

१७ दिसम्बर, को भिवानी में तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के सदस्य, सक्रिय समाजसेवी ७३ वर्षीय **श्री जयनारायण जैन 'काकाजी' (मेरठ)** का स्वर्गवास हो गया।

२४ दिसम्बर को लखनऊ में हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान ७० वर्षीय **डॉ. ओमप्रकाश त्रिवेदी**, भू.पू. रीडर, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय दिवंगत हो गये।

२७ दिसम्बर को दिल्ली में ८७ वर्षीय सक्रिय समाजसेवी **श्री भगतराम जैन** का लम्बी बीमारी के बाद निधन हो गया। उसी दिन मैसूर में ७८ वर्षीय लब्धप्रतिष्ठ जैन विद्वान **डॉ. एम.डी. वसन्तराज** नहीं रहे।

१८ जनवरी, २००३ को मुम्बई में ६५ वर्षीय जाने माने हिन्दी के कवि **डॉ. हरिवंशराय बच्चन** मधुशाला में ताला डाल चले गये।

२० जनवरी को अपोलो अस्पताल, दिल्ली में पं. टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के महामंत्री, मुमुक्षु समाज के लौह पुरुष ६१ वर्षीय **श्री नेमीचंद पाटनी** का निधन हो गया।

२६ जनवरी को हस्तिनापुर में समाजसेवी **बा. मंगल किरण जैन (सहारनपुर)** की मृत्यु हो गई।

५ फरवरी को जोधपुर में ६२ वर्षीय आत्मार्थी **पूज्य हुकमीचंद जी म.सा.** का देहावसान हो गया।

६ फरवरी को चन्देरी में श्री अ.भा. दिगम्बर जैन विद्वत्परिषद एवं परवार महासभा के संरक्षक, स्वतंत्रता संग्राम सेनानी त्रिशताब्दीदर्शी १०५ वर्षीय **पं. चुन्नीलाल शास्त्री** का समताभावपूर्वक पद्मासन अवस्था में प्राणान्त हो गया।

१२ फरवरी को लखनऊ में ५२ वर्षीय धर्मनिष्ठ समाजसेवी उद्योगपति **श्री प्रभात कासलीवाल** का असामयिक स्वर्गवास हो गया।

१४ फरवरी को लखनऊ में ७५ वर्षीय धर्मनिष्ठ, सरलस्वभावी **श्रीमती प्रकाशवती जैन** (पत्नी स्व. नरेन्द्रभूषणजैन, जसवंतनगर) दिवंगत हो गई।

२३ फरवरी को फिरोजाबाद में ८० वर्षीय धर्मनिष्ठ, सरलस्वभावी उद्योगपति **श्री मुन्नालाल जैन (गढ़ी वाले)** का स्वर्गवास हो गया।

२४ फरवरी को लखनऊ में ७५ वर्षीय धर्मनिष्ठ सरलस्वभावी वस्त्र–व्यवसायी **श्री देवकुमार जैन (डालीगंज)** का निधन हो गया।

७ मार्च को लखनऊ में ६१ वर्षीय धर्मनिष्ठ श्रावक **श्री ललित प्रसाद जैन** तथा २४ मार्च को उनकी धर्मपत्नी **श्रीमती सुदामा देवी जैन** (तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति के आजीवन सदस्य श्री पारस कुमार जैन के पिताश्री व माताश्री) का निधन हो गया।

२१ मार्च को नई दिल्ली में हिन्दी की प्रख्यात उपन्यास–कहानी लेखिका ७६ वर्षीया **श्रीमती गौरादेवी पंत 'शिवानी'** का स्वर्गवास हो गया।

उपर्युल्लिखित सभी दिवंगत महानुभावों के प्रति **शोधादर्श** परिवार अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करता है, उनकी आत्मा की चिर शांति और सद्गति के लिये जिनेन्द्रदेव से प्रार्थना करता है और शोक संतप्त उनके स्वजनों–परिजनों के प्रति हार्दिक संवेदना व्यक्त करता है।

---

# आभार

**श्री अजित प्रसाद जैन,** पारस सदन, आर्यनगर, लखनऊ ने अपने पौत्र कैप्टन मनीष (सुपुत्र स्व. मणिकान्त जैन) के शुभ विवाह के उपलक्ष में **शोधादर्श** हेतु रु. १०१/– भेंट किये।

**डॉ. शशिकांत–रमाकान्त** जैन, ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ ने अपने पूज्य पिताश्री इतिहास–मनीषी स्व. डॉ. ज्योति प्रसाद जैन की ६१वीं जन्म–जयन्ती पर उनकी स्मृति में **शोधादर्श** को रु. ५१/– भेंट किये।

**डॉ. एस. के. (शैल कुमार) जैन**, माडल हाउस, लखनऊ ने समिति के **शोध पुस्तकालय** के विकास हेतु रु. ४०००/– भेंट किये।

**श्रीमती आशा जैन,** ज्योति निकुंज, चारबाग, लखनऊ ने अपनी पूज्य माताजी स्व. श्रीमती प्रकाशवती जैन (जसवंतनगर) की पुण्य स्मृति में **शोधादर्श** को रु. १०१/– भेंट किये।

**सर्वश्री विशनलाल, कैलाशचंद्र, रमेशचंद्र, महेशचंद्र जैन,** १४३, आगरा गेट, फिरोजाबाद ने अपने पूज्य पिताजी स्व. श्री मुन्नालाल जैन की पुण्य स्मृति में **'शोधादर्श'** को रु. १०१/– भेंट किये।

**सर्वश्री पारस कुमार–नरेश कुमार जैन, आर्यनगर,** लखनऊ ने अपने पूज्य पिताश्री ललित प्रसाद जी व पूज्य माताश्री सुदामा देवी जी की पुण्यस्मृति में **'शोधादर्श'** को रु. २५०/– भेंट किये।

**श्री अवनीश गर्ग– श्रीमती रेखा गर्ग,** अग्रवाल बिल्डिंग, मकबरा रोड, हजरतगंज, लखनऊ ने **'शोधादर्श'** को विशेष सहायता स्वरुप रु. ५०१/– भेंट किये।

**श्री ज्ञानेन्द्र मोहन सिन्हा,** १६–सी, शान्ति मार्ग, महानगर विस्तार, लखनऊ– ६ ने **'शोधादर्श'** को रु. ५०/– भेंट किये।

# पाठकों के पत्र

**शोधादर्श–४८** पढ़ा। उसमें सामयिक परिदृश्य पर रमाकान्त जी की क्षणिकाएं चिकोटी काटने वाली ही नहीं, मुक्का मारने वाली हैं

**– डॉ० विजय कुमार जैन, गोमतीनगर, लखनऊ**

**शोधादर्श–४८** एक ही बैठक में पूर्ण रूप से पढ़ चुका हूँ। संपादकीय सटीक है। आप जैसे निर्भीक सम्पादक ही इस प्रकार की कलम चला सकते हैं। अजित प्रसाद जी वय में वृद्ध हो चुके हैं। किन्तु उनकी लेखनी युवा है। श्रमण संस्कृति में आ रही विकृतियों को दूर करने के लिये सदैव चिंतित रहते हैं। मुझे इस प्रकार के यथार्थवादी लेखकों की कलम पर गर्व है।

**– ब्र. संदीप सरल, बीना**

**शोधादर्श–४८** में ज्योतिपुरुष डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का नैगमेश सम्बंधी लेख अत्यन्त सारगर्भित और ज्ञानवर्द्धक है। अद्यावधि नैगमेश को महावीर के गर्भापहरण का कर्त्ता माना जाता रहा है, किन्तु इस लेख में उद्धृत साहित्यिक साक्ष्यों तथा मथुरा–शिल्प में प्राप्त नैगमेश की मूर्तियों के विश्लेषण से उनका सम्बन्ध देवकी की छह संतानों की सुरक्षा से जुड़ जाता है। अब तक यह जानकारी सर्वज्ञात नहीं थी।

इस अंक में भी अजित प्रसाद जैन ने वैशाली–कुण्डग्राम के विरोध में दिये गये कतिपय प्रमुख तर्कों का अकाट्य विश्लेषण प्रस्तुत करते हुए सिद्ध किया है कि वीर–जन्मस्थली ऐतिहासिक पुरातात्विक साक्ष्यों के आलोक में वैशाली जिले के बसाढ़ गांव के निकट थी। सम्पादकीय और 'समाचार विमर्श' में 'महासभा अधिवेशन' और 'लब्धि समारोह' के अंतर्गत जैन मुनियों में बढ़ते लोभ–मोह पर वांछित टिप्पण है।

डॉ. शशिकान्त द्वारा भक्तामर स्तोत्र सम्बन्धी भ्रम–निवारण भी इस अंक की महत्वपूर्ण रचना है और रमाकान्त द्वारा नियमित 'गुरुगुण–कीर्तन' वस्तुतः एक शोधपरक और सारगर्भित लेख ही रहता है। अन्य रचनाएं भी पठनीय हैं।

**– डॉ. ए. एल. श्रीवास्तव, लखनऊ**

**शोधादर्श–४८** में 'समाचार विमर्श' अनूठा है, पत्रिका की जान है। कविवर बनारसीदास विषयक आलेख साधुवाद का पात्र है। सम्पादकीय के क्या कहने–पू. चाचाजी को मेरी ओर से बधाई एवं साधुवाद !

**– डॉ. अभय प्रकाश जैन, ग्वालियर**

**शोधादर्श** पढ़ता हूं। उसमें गंभीर–ज्ञानपरक आलेखों के लिये बधाई ! संपादन में श्रेष्ठता झलकती है।

**– वीरेन्द्र भाटी मंगल, लाडनूं**

**शोधादर्श** निष्पक्ष एवं निर्भीक लेखन हेतु लब्धप्रतिष्ठ पत्रिका है। शोधकर्ताओं एवं शोधार्थियों के परिचयात्मक शोध–कार्य सम्बन्धी अनुपम जानकारी के लिये यह बेमिसाल है। जैन दर्शन एवं संस्कृति के विवेचन में इसकी विशेष भूमिका है। यह पठनीय है, संग्रहणीय है।

**– डॉ. रतनलाल जैन, हांसी**

**शोधादर्श–४८** में कविवर बनारसीदास पर विस्तृत लेख प्रस्तुत कर श्लाघनीय कार्य किया है। डॉ. ज्योति प्रसाद जैन का लेख रोचक तथा शोधपूर्ण है। 'हमारी दुर्बलता और हीनता का कारण' लेख कुछ सोचने को विवश करता है। 'अर्जुनमाली' (नाटिका) में रोचकता और कुतुहल है। शांतिलाल शहा और डॉ. महेन्द्रसागर प्रचंडिया की काव्य–रचनायें सुन्दर हैं। आपकी पत्रिका को मैं सदैव चाव के साथ पढ़ता हूं। इसीलिये प्रतिक्रिया व्यक्त किये बिना नहीं रह पाता।

**– डॉ. परमानन्द जड़िया, लखनऊ**

**शोधादर्श–४८** में 'कवि बनारसीदास, लेख पढ़ने को मिला। सुन्दर ज्ञानवर्धक आलेख के लिये साधुवाद !

**– ब्रह्मराज मित्तल, हांसी**

**शोधादर्श** नवम्बर २००२ अंक मिला। सम्पादकीय, 'वीर–जन्मस्थली कुण्डलपुर' लेख और 'समाचार विमर्श' में बड़ी मधुर भाषा में सभी कुछ आ गया है।

जमनालाल जी के लेख में इतने डाटा के साथ आज की सही स्थिति पर कटाक्ष सभी कुछ कह जाता है। कोई लिख देते हैं, कोई खुलकर लिखने की हिम्मत नहीं करते।

प्रायः सभी स्थानों पर, सभी समुदायों में यंत्र–तंत्र, चमत्कारों पर विश्वास होता जा रहा है––अपने दर्शन के प्रति खरी श्रद्धा में धीरे–धीरे कमी आती जा रही है और कारण है–युवापीढ़ी की शंकाओं का समाधान करने को समाज में कम लोग हैं और स्थानीय उपलब्धता प्रायः नहीं है। आज के 'साधु' जो कहें वही सच समझकर समाज बह रहा है और इस कारण समाज में अश्रद्धा का वातावरण पनप रहा है। आपका लेख, भाई जमनालाल जी का लेख पाठकों के लिये सहारे का, ढाढस बंधाने का काम कर रहे हैं।

**– शैलेन्द्र कुमार जैन, खुरजा**

**शोधादर्श–४८** के सम्पादकीय में वर्तमान प्रचार–तंत्र द्वारा अपने पंथ/गुरु/आचार्य की पताका फहराने की प्रवृत्ति को उद्घाटित किया गया है। मानव–स्वार्थसिद्धि का एक रास्ता यह भी है। भ.महावीर की जन्मस्थली को विवाद का मुद्दा न बनाया जाये।

**शोधादर्श** में समाचार विविधा और साहित्य समीक्षा पठनीय है।

**– डॉ. निज़ामुद्दीन, बलैनी (बागपत)**

**शोधादर्श** का ४८वां अंक सज–धज के साथ सुन्दर आवरण में प्राप्त हुआ। सभी लेख पठनीय एवं चिन्तनीय हैं। महाकवि बनारसीदास जी का समग्र साहित्य एक ही ग्रन्थ में प्रकाशित करने की आवश्यकता है। आपका सम्पादकीय अग्रणी लेख वर्तमान में शिथिलाचार पर एक चिंतनीय प्रहार है। 'मफतकाका' का 'पुण्यानुबंधी पुण्य' लेख भी पठनीय है–बशर्ते हम जैन लोग इसे व्यवहार में लावें।

**– हजारीमल बॉठिया, कानपुर**

**शोधादर्श** का ४८वां अंक आद्योपान्त पढ़कर ही छोड़ पाया हूं। सम्पादकीय समयानुकूल वेदनायुक्त है। निश्चित रूप से श्रमणाचार में आज बहुत सी त्रुटियां समाहित हो गई हैं। समझ में नहीं आता आज के कतिपय हमारे साधु संत जैन धर्म के सिद्धान्तों से छेड़खानी करने में क्यों लगे हुये हैं। राज्य अतिथि का दर्जा किसी भी साधु संत के आचरण के विपरीत है।

जमनालाल जी का लेख काफी विचारणीय है। वीर जन्म स्थली कुण्डलपुर प्रकरण पर आपका विश्लेषण बहुत अच्छा लगा। समाचार विमर्श सदा की भांति समाज को दर्पण दिखाने में पूर्ण है।

**– पं. सुनील जैन 'संचय' शास्त्री, नरवां (सागर)**

आपके अथक परिश्रम एवं गहरी अभिरुचि के फलस्वरूप **शोधादर्श** दैनंदिन निखर रहा है। पीत पत्रकारिता के इस युग में **शोधादर्श** जिन आदर्शों की स्थापना करने मे संलग्न है–वे श्रमण संस्कृति के ही संवाहक हैं।

**– डॉ. मालती जैन, मैनपुरी**

**शोधादर्श** (नवम्बर २००२) का सम्पादकीय भी पिछले अंकों के समान मन–मस्तिष्क को झकझोर देने वाला है। पर आपने इस प्रकार के मुनियों के भक्तों के संबंध में कुछ क्यों नहीं लिखा?आखिर वे भक्त ही तो हैं जो अपनी कमाई (काली कमाई) इन मुनियों के चरणों में अर्पित कर समाज में अपनी नाक ऊंची किये रहते हैं।

**– महेन्द्र राजा जैन, इलाहाबाद**

**शोधादर्श–४८** में 'गुरुगुण–कीर्तन' के अन्तर्गत कविवर बनारसीदास के विषय में जानकारी पढ़ी। कितने विद्वान जैन जगत के हो चुके हैं जिन्होंने जिनवाणी की सेवा में अपना अमूल्य जीवन लगा दिया।

श्री रजनीश का सोच चिंतन जो भी हो, एक जन्म में महावीर नहीं बने थे। मारीच के बाद कितने जन्म धारण किये। दस जन्मों की उन्नति तक का विवरण तो ज्ञात है। उत्तरोत्तर उन्नति करते रहने से ही जीव मोक्ष प्राप्त करता है, हमारी अल्पबुद्धि तो यही समझती है। पूरा का पूरा अंक ज्ञानवर्द्धक है।

**–राजदुलारी जैन, कानपुर**

**शोधादर्श** पत्रिका बराबर मिल रही है। आपके प्रयत्न प्रशंसनीय है।

**– डॉ. धर्मचंद जैन, जोधपुर**

**शोधादर्श–४८** आद्योपांत पढ़ा। सम्पादकीय 'मंगलम् पुष्पदंताद्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलम्' अत्यन्त सुखकर लगा। आजकल सभी यश–ख्याति के प्रति ही सतर्क हैं और अपने नाम को उत्तरोत्तर बढ़ाने की ललक है।

जमनालाल जी का लेख सच्चाई को शत प्रतिशत इंगित करता है। हमारी कमियों ने ही हमें पराधीन होने पर बाध्य किया। हम मात्र प्रदर्शन में ही विश्वास रखते हैं।यह एक कटु सत्य है। अन्य आलेख भी संग्रहणीय हैं।

**–सुन्दरसिंह जैन देहली**

**शोधादर्श–४८** पढ़कर यह शिष्यानुशिष्य धन्य–धन्य हुआ। अंक में समाहित सभी सरस्वती–सुपुत्र साधुवाद के पात्र हैं, जिनके साहित्यिक सहकार से '**शोधादर्श**–४८' एक शाश्वत दस्तावेज के रूप में सदैव पढ़ा जायेगा। सम्पादकीय में प्रस्तुत साहित्य–चोरी एवं संतों में व्याप्त शिथिलाचार का सप्रमाण उदाहरण समाज एवं पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करने का सफल प्रयास किया है–वह स्तुत्य है। कहा भी है–

लिखते लेखक और हैं, नाम छपे श्रीमान्।
फूंक पराई जब लगे, शंख करे गुणगान।।
शंख करे गुणगान, गीत की चोरी करते।
धिक्–धिक् ऐसे लोग, शर्म से क्यों ना मरते।।
उनसे लिखवा रहे, दीन लेखक जो बिकते।
गोबर–गणेश नकल, 'पारदर्शी' कर लिखते।।

**–ऊँ पारदर्शी, उत्तरी आयड, उदयपुर**

त्यागीवर्ग और विद्वतवर्ग के निन्दनीय शिथिलाचार के समाचारों तथा तद्विषयक सम्पादकीय विश्लेषणों से जिनसे जैन शासन और जैन समाज की विडम्बना लोक में हास्यास्पद होती रहती है **शोधादर्श** के कितने ही अंकों में पढ़ते–पढ़ते मेरे भी संक्लेश परिणाम होते हैं।

जैनधर्म और जैन समाज की शक्ति, विवेकपूर्ण मार्गदर्शन, और शरण्यता का विश्वास ही श्रावकवर्ग की धार्मिक, नैतिक परस्परोपग्रहात्मक जीवनचर्या के आधार हैं। वे आधार ही जब अवनति की चरम सीमा तक टूट रहे हैं तो निराधार श्रावक वर्ग भी अज्ञान और मिथ्यात्व के दलदल में फंसा आत्मघात में इन दोनों नेता वर्गों द्वारा प्रवृत्त किया जा रहा हैं।

**शोधादर्श** का महान उपकार है कि इसके परिश्रमी और संस्कारी संचालक वर्तमान दुःस्थिति का हमें बोध करा रहे हैं और सावधान होकर हमें इन तथाकथित त्यागियों–विद्वानों के भ्रमात्मक क्रियाकाण्ड की अन्धश्रद्धा न करके अपना जीवन नष्ट न करने की प्रेरणा देते हैं। प्रलय काल निकट है, ऐसा हमें प्रत्यक्ष लग रहा है। भौतिक वैज्ञानिक वर्ग ने प्रलयंकर साधनों को प्रस्तुत कर दिया है और आत्मरक्षक धर्म को वेषधारी बहुरुपियों ने विडम्बना और अविश्वसनीय बना दिया है।

**– सुखमालचंद्र जैन, नई दिल्ली**

'शोधादर्श' हर्ष उत्कर्ष गुण ज्ञान लिये।
'गुरु गुण कीर्तन– 'रमाकान्त' गाते हैं।
'हमारी दुर्बलता व हीनता के कारण' को
'जैन जमना जी लाल' खोज बतलाते हैं।।
'मथुरा की नैगमेश मूर्तियां व कृष्ण जन्म,
उक्त लेख मध्य तर्क तथ्य पूर्ण पाते हैं।
शोध पूर्ण सम्पादकीय ज्ञान रस भरा,
नाटक 'अबोध' गीत सभी मन भाते हैं।।

**–दयानंद जड़िया 'अबोध', लखनऊ**

अंक–४८ दो दिन में आद्योपान्त पढ़ा। आपका सम्पादकीय लेख सत्य को निर्भीकता के साथ उजागर करता है। बड़ी निर्भीकता से लिखा है, ढेर सारी शुभकामनाएं। शिथिलाचार केवल लिखने से बंद नहीं होगा, जैन समाज नपुंसक हो गया है। फिर भी लिखते रहने से जन साधारण को पता तो चलता है। भाई

रमाकान्त का फक्कड़ संत कविवर बनारसीदास का सारभूत जीवन परिचय तथा सदैव की भांति जानदार क्षणिकाएं, साध्वी मंगल प्रज्ञा जी की जैन दर्शन के कर्मवाद की सरल व्याख्या, डॉ. शशिकांत का भक्तामर स्तोत्र पर खोजी लेख व अन्य सभी लेख सराहनीय, पठनीय एवं विचारणीय हैं। बधाई !

**— महावीर प्रसाद जैन सर्राफ**

**शाकाहार प्रचारक, दरियागंज, नई दिल्ली**

**शोधादर्श—४८** में आपका सम्पादकीय लेख पढ़कर मुंह से एक दोहा अनायास ही निकला—

कलम अजित प्रसाद की,  
स्याही करत प्रकाश।  
करतब पाखंडीन के  
देख चित्त होत उदास।।

यह सही है कि मंत्र—तंत्र—यंत्र भी जैन धर्म की एक विधा है और कुछ ऐसे भी हैं जिनका अध्यात्म से कोई ताल्लुक नहीं और लौकिक इच्छाओं के निम्नतर स्तर की पूर्ति के लिये गढ़े गए हैं मगर जिन मंत्रों को आपने निशाना बनाया है वे मेरे देखने में इससे पहले नहीं आए। इन मंत्रों को पुष्पदंतसागर जी ने शायद सिद्ध भी किया होगा और वे अभिनय कला पटु भी हैं। फिर भला उनके शिष्य सौरभ सागर मूंछ रखते हैं तो कोई आश्चर्य नहीं। एक शिष्य दाढ़ी रखता है, दूसरा मूंछें। राजस्थानी होने के नाते मैं किसी दिन यह सुनूं कि किसी मुनि ने पिच्छी की जगह कोई तलवार या कटार धारण कर ली है तो मुझे कोई आश्चर्य नहीं, हर्ष होगा। इन मुनियों से क्यों न कहा जाए कि मुनिवर अनगार संहिता पर भी संगोष्ठी कराएं और अपनी दाढ़ी व मूंछों पर मुहर समाज की लगवा लें। इससे क्या यह अच्छा नहीं कि जैनेतर साधुओं की भांति नाई से केश भी मुंडवा लें। शायद अब यही जैन धर्म का स्वरूप होगा— काश ! तब हम न होंगे !! ये धर्म रथ को खींचने वाले बैल नहीं सांड हैं। पुष्पदंतसागर जी की भी मूर्ति बनाकर उसका लांछन अलसेशियन—(१) रखना भी अवश्य ही उचित होगा।

**— जस्टिस एम. एल. जैन, नई दिल्ली**

आपके कुशल संपादन से संपादित पत्रिका प्राप्त हो रही है। **शोधादर्श** के शोधपरक लेख पढ़कर एक शोधछात्रा के शोधकार्य में काफी प्रगति हुई है।

**— श्रीमती बबीता जैन, शोध छात्रा**

**राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर**

**शोधादर्श**– ४८ का आवरण पृष्ठ सुख– सौहार्दता का सूचक है। 'गुरुगुण–कीर्तन' कविवर बनारसीदास के बारे में अच्छी जानकारी देता है। सम्पादकीय जहाँ तीन महात्माओं के बारे में संकेत करता है वहीं कुन्दकुन्दाचार्य की प्रतिष्ठा की ओर भी झांककर प्राचीन व नई साधु प्रवृत्ति का दिग्दर्शन कराता है। 'कर्मफलभोग: एक समीक्षा' बहुत कुछ सोचने–समझने को बाध्य करता है। 'पुण्यानुबंधी पुण्य' व्रत व उपवास की महत्ता को सामने रखता है। 'अमृत मंथन' तथा 'क्षणिकाएं' आदमी की मनोवृत्ति की स्थिति सामने रखती हैं। 'समाचार विमर्श' एवं 'साहित्य सत्कार' सदैव की भांति ज्ञानवर्द्धक जानकारी देते हैं।

**– मदनमोहन वर्मा, ग्वालियर**

---

# छपते–छपते

अहिंसा इन्टरनेशनल, नई दिल्ली के संयोजक श्री प्रदीप कुमार जैन ने सूचित किया है कि पत्रकारिता में उत्कृष्ट योगदान के लिये **'शोधादर्श'** के प्रधान सम्पादक **'श्री अजित प्रसाद जैन'** को २० अप्रैल, २००३ को चिनमाया सेवा समिति (मिशन) सभागार, लोधी रोड, नई दिल्ली में वर्ष २००२ के लिये **अहिंसा इंटरनेशनल प्रेमचंद जैन–पंत्रकारिता पुरस्कार** से सम्मानित किया जावेगा।

# आवश्यक सूचना

**इस वर्ष का वार्षिक शुल्क ५० रु. (पचास रुपये), यदि अभी नहीं भेजा हो, तो कृपया मनीआर्डर द्वारा 'महामंत्री, तीर्थंकर महावीर स्मृति केन्द्र समिति, उ. प्र., पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४', को शीघ्र ही भेजने का अनुग्रह करें। चेक लखनऊ के ही स्वीकार होंगे। एक प्रति का मूल्य २० रु. (बीस रुपये) है।**

**शोधादर्श** चातुर्मासिक पत्रिका है और सामान्यतया इसके अंक मार्च, जुलाई व नवम्बर में प्रकाशित होते हैं।

**शोधादर्श** में प्रकाशनार्थ शोधपरक एवं अप्रकाशित लेख आमंत्रित हैं। लेख कागज के एक ओर सुवाच्य अक्षरों में लिखित अथवा टंकित होना चाहिये और उसमें यथावश्यक सन्दर्भ/स्रोत सूचित किये जाने चाहिएं। यथासंभव लेख ३-४ टंकित पृष्ठ से अधिक न हो। **लेख की एक प्रति अपने पास अवश्य रख लें।**

**शोघादर्श में समीक्षार्थ** पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की **दो प्रतियां** भेजी जायें।

**शोधादर्श** में प्रकाशित लेखों को उद्धरित किये जाने में आपत्ति नहीं है, परन्तु **शोधादर्श** का श्रेय स्वीकार किया जाना और पूर्ण सन्दर्भ दिया जाना अपेक्षित है।

प्रकाशनार्थ लेख और समीक्षार्थ पुस्तक/पत्रिका सम्पादक को पारस सदन, आर्य नगर, लखनऊ-२२६ ००४, के पते पर भेजे जायें।

लेखक के विचारों से सम्पादक मंडल का सहमत होना आवश्यक नहीं है। लेखों में दिये गये तथ्यों और सन्दर्भों की प्रामाणिकता के संबंध में लेखक स्वयं उत्तरदायी है।

सभी विवाद लखनऊ में स्थित सक्षम न्यायालयों /न्यायाधिकरणों के क्षेत्राधिकार के अधीन होंगे।

सुधी पाठक कृपया अपनी सम्मति और सुझावों से अवगत करावें ताकि पत्रिका के स्तर को बनाये रखने और उन्नत करने में हमें प्रोत्साहन तथा मार्गदर्शन प्राप्त होता रहे। कृपया पत्रिका पहुंचने की सूचना भी देवें।

**- प्रधान सम्पादक**

❑ ❑ ❑